CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संस्कृत
निबंध कौमुदी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

Acco. No 726

भारतीय विद्या भवन
नई दिल्ली
श्री/श्रीमती/कुमारी............
को.........परीक्षा.........में
उत्तीर्ण होने पर पुरस्कृत की गई
मंत्री
संचालक
दिनाँक.....16..10..71....

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.
Presented by Mr. M.S.P. Sharma, Head of the Skt. Deptt. B.V. Bhavan, New Delhi. 16th Oct. 41

संस्कृत निबन्ध कौमुदी

(बी० ए० संस्कृत परीक्षा पाठ्यक्रमानुसार)

(प्रथम भाग)

Bharatiya Vidya Bhawan's Sri Sankaracharya Sanskrit Mahavidyalaya
566

डा० बाबूराम त्रिपाठी
शास्त्री, एम० ए० (हिन्दी संस्कृत) पी० एच० डी
अध्यक्ष संस्कृत विभाग
सेण्टजांस कालेज, आगरा

भारतीय विद्या भवन
नई दिल्ली
श्री/श्रीमती/कुमारी............
को........परीक्षा.........में
उत्तीर्ण होने पर पुरस्कृत की गई
मंत्री संचालक
दिनाँक....................

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

MUNSHI RAM MANOHAR LAL
Oriental & Foreign Book-Sellers,
P.B. 1165, Nai Sarak, DELHI-6

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रकाशक
विनोद पुस्तक मन्दिर
कार्यालय : रांगेय राघव मार्ग, आगरा–२
बिक्री-केन्द्र : हॉस्पिटल रोड, आगरा–३

Bhawan's Sri Sankarach... Bharatiya ...
566

[सर्वाधिकार लेखकाधीन]

प्रथम संस्करण : १९७०

मूल्य : ३.००

कम्पोजिंग : हिन्दी कम्पोजिंग गृह, आगरा
मुद्रण : कैलाश प्रिन्टिङ्ग प्रेस, आगरा–२
[३१३७०२२]

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अनुक्रमणिका

विषयाः	पृष्ठाङ्काः
१. जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी	१
२. नास्त्युद्यमसमो बन्धुः	३
३. परोपकाराय सतां विभूतयः	५
४. विद्वान् सर्वत्र पूज्यते	६
५. संस्कृत भाषाया महत्त्वम्	८
६. बुद्धि र्यस्य बलं तस्य	१०
७. धैर्यं हि महतां धनम्	११
८. मम महाविद्यालयः	१३
९. स्वतन्त्रभारते संस्कृतमहत्त्वम्	१५
१०. सत्संगतिः	१६
११. तीर्थयात्रा वर्णनम्	१८
१२. जन्मभूमिः	१९
१३. समाजसेवा	२१
१४. रम्या रामायणी कथा	२२
१५. भारतमहिमा	२४
१६. सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते	२६
१७. अतिथिसत्कारः	२७
१८. अनुशासनम्	२९
१९. विश्वशान्तिः	३१
२०. राष्ट्रभाषा	३३
२१. भारतीया संस्कृतिः	३४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२२. अखण्डं भारतं राष्ट्रम् ३६
२३. विद्या सर्वत्र पूज्यते ३८
२४. नारीशिक्षा ४०
२५. वर्षाकाल: ४१
२६. महाकवि: कालिदास: ४३
२७. नारीशिक्षा कीदृशी भवेत् ४५
२८. ऋतुवर्णनम् ४७
२९. पाठशाला ५१
३०. गद्यकवि: वाण ५३
३१. गुणा: पूजास्थानम् ५५
३२. विधि रहो बलवानिति मे मति: ५६
३३. कृधी न ऊर्ध्वं चरथाय जीवसे ५८
३४. सद्विद्या यदि किं धनै: ६०
३५. प्रायेण नरेन्द्रश्री: सोत्साहैरेव भुज्यते ६२
३६. वसन्तोत्सव: ६५
३७. महापुरुषचरितम्—बुद्धदेव: ६६
३८. भारतीयसंस्कृतौ नारीस्थानम् ६९
३९. आचार: प्रथमो धर्म: ७२
४०. न्याय्यात्पथ: प्रविचलन्ति पदं न धीरा: ७३
४१. वाग्भूषणं भूषणम् ७६
४२. दीपमालिका ७७
४३. मम सुप्रियं पुस्तकम् (गीता) ७९
४४. महात्मा गान्धि: ८१
४५. चक्रवत्परिर्तन्ते दु:खानि च सुखानि च ८४

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

४६.	आपदां तरणि धैर्यम्	८६
४७.	कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते	८९
४८.	कः परः प्रियबादिनाम्	९२
४९.	विकार हेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः	९४
५०.	अहिंसा परमो धर्मः	९६
५१.	उत्तमं हि धनं विद्या	९८
५२.	देवो दुर्बलधातकः	१००
५३.	सहसा विदधीत न क्रियाम्	१०२
५४.	उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्	१०४
५५.	बुभुक्षितः किन्न करोति पापम्	१०६
५६.	इयमुदरदरी, दुरन्तपूरा, यदि न भवेदभिमानभङ्गभूमिः	१०९
५७.	विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्	१११
५८.	आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत	११३
५९.	छात्रकर्तव्यम्	११५
६०.	आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः	११७
६१.	अभ्यासार्थ निबन्ध विषय	१२१
६२.	सुभाषितानि	१२३
६३.	निबन्ध विपयक आवश्यक निर्देश	१३०

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

संस्कृत निबन्ध कौमुदी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्राक्कथन

संस्कृत गद्य साहित्य को लेकर प्राचीन तथा मध्य युग में अनेक ग्रन्थों की रचना हुई है। इनमें यत्र-तत्र निबन्धों की भी स्थिति देखी जा सकती है। दार्शनिक ग्रन्थों में तो दर्शन-विषयक विवेचनापूर्ण भाष्य, निबन्धादि हैं ही, पर तदतिरिक्त गद्य साहित्य-वाण दण्डी आदि की रचनाओं में भी निबन्धों की स्थिति है, यद्यपि यह सत्य है कि प्राचीन संस्कृत गद्य साहित्य में निबन्ध शैली का स्वतन्त्र रूप से विकास न हो सका था। आधुनिक काल में संस्कृत साहित्यकारों की रुचि इस ओर बढ़ने लगी है और संस्कृत निबन्धों का एक स्वतन्त्र विधा के रूप में विकास होने लगा है। प्रस्तुत पुस्तक भी इसी कोटि का एक प्रयास है।

प्रस्तुत पुस्तक के निबन्ध विश्वविद्यालय के बी० ए० के छात्रों के मार्गदर्शन के लिये लिखे गये हैं। इसी दृष्टि से निबन्धों का आकार, उतना ही रखा गया है जितना परीक्षा के लिये उपयोगी है, भाषा और शैली भी उसी स्तर की रखी गई है जिससे कि छात्र सरलतापूर्वक स्वयं इन्हें पढ़ सकें और समझ सकें। विषयो के निर्वाचन में भी परीक्षा पाठ्यक्रम तथा छात्रों के स्तर का भी विशेष रूप से ध्यान रखा गया है। अपने दीर्घकालीन अनुभव के आधार पर छात्रों की एतत्सम्बन्धी आवश्यकता को ध्यान में रखकर पुस्तक को उपयोगी बनाने का प्रयास किया गया है।

जैसा कि ऊपर बताया गया है कि इस समय निबन्ध लिखने की ओर विद्वानों की उत्तरोत्तर अभिरुचि बढ़ रही है। फलतः निबन्ध विषय पर कई पुस्तकें उपलब्ध हैं, जिनमें अनेक छोटे-बड़े निबन्धों का संकलन है, पर इस पुस्तक में अन्य विद्वानों के निबन्धों का संकलन नहीं किया गया है और न निबन्धों को अनावश्यक विस्तार ही दिया गया है। वस्तुतः इन निबन्धों के लिखने की प्रेरणा भी हमें अपने छात्रों से ही प्राप्त हुई है और उन्हीं के आग्रह पर यह पुस्तक तैयार की गई है और इसमें हमें उन्हीं का सहयोग भी प्राप्त हुआ है। अपनी-अपनी आवश्यकतानुसार उन्हीं ने जिन विषयों को निर्वाचित करके मुझे दिया था, उन्हीं पर ये निबन्ध लिखे गये हैं।

Shri Venkatacharya Sanskrit Mahavidyalaya

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पहिले तो अन्य निबन्ध विषयक पुस्तकों की भाँति इस पुस्तक में केवल कुछ निबन्ध ही देने का मेरा विचार था, पर जैसा कि बी० ए० के छात्र जानते हैं कि संस्कृत निबन्ध बिना व्याकरण की सहायता के नहीं लिखे जा सकते, व्याकरण के नियमों का संक्षेप में ज्ञान होना निबन्धों के लिये अत्यावश्यक है। अतः उन्हीं के आग्रह पर इस पुस्तक के अन्त में निबन्ध लिखने के लिये व्याकरण सम्बन्धी कुछ नियम भी दिये गये हैं। लगभग २० नियमों के अन्तर्गत सन्धि, कारक, क्रिया, अव्यय, कृदन्त, तद्धित, तिङन्त प्रक्रिया आदि के सभी नियमों को अति संक्षेप में रखकर उनकी प्रयोग विधि को बतलाया गया है जिससे कि छात्र इन नियमों के अनुसार इन तथा ऐसे ही विषयों पर स्वयं अन्य निबन्ध सरलतापूर्वक लिख सकें और जितना व्याकरण उन्हें अपेक्षित है वह भी जान सकें, इस प्रकार यह निबन्ध विषयक पुस्तक अपने ढंग की एक अलग शैली में ही लिखी गई है और सब कुछ वही प्रयास किया गया है जो छात्र चाहते हैं।

निबन्धों के अन्त में कुछ अत्यावश्यक निबन्धों के विषय निर्वाचित किये गये हैं। छात्रों को इन विषयों पर स्वयं निबन्ध लिखने का अभ्यास करना चाहिए। अन्त में कुछ सुभाषितों का संग्रह है जो कि निबन्धों के बीच विषयानुसार क्रम में लाये जा सकते हैं तथा जिनका अन्यत्र भी प्रयोग किया जा सकता है।

स्पष्ट है कि पुस्तक का मुख्य उद्देश्य बी० ए० के छात्रों की महती आवश्यकता की पूर्ति है अतः विद्वज्जनों को इसमें कुछ नवीनता न मिलेगी पर मैंने जिन विद्वानों की एतत्सम्बन्धी पुस्तकों का अध्ययन किया है और उनसे विचार ग्रहण किये हैं उनका यत्र-तत्र संकेत करते हुये भी उनके प्रति आभार प्रकट करना मैं अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ। आचार्य श्री श्रीधरप्रसाद पन्त, डा० श्रीराम जी उपाध्याय, श्रीचारुदेव शास्त्री, डा० रमेशचन्द्र शास्त्री, मङ्गलदेव शास्त्री आदि विद्वान् इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं।

इस पुस्तक को, इस नवीन शैली में, इतने थोड़े समय में, तैयार करने का श्रेय वस्तुतः कुमारी दया अग्रवाल एम० ए० को ही है, जिन्होंने अपने अध्ययन काल में ही इस ओर विशेष रुचि रखकर कितने ही निबन्धों को तैयार किया था और आज भी यद्यपि वह अपने शोध कार्य में संलग्न रहती हैं फिर भी इस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कार्य में उन्होंने अपना पूरा सहयोग दिया है। फलतः अपने इस रुचिकर विषय को पुस्तककार में देखकर उन्हें अवश्य प्रसन्नता होगी और उनकी इस प्रकार की रुचि इस साहित्य-विधा के क्षेत्र को और अधिक प्रशस्त कर सकेगी, ऐसी आशा है।

इस पुस्तक के प्रकाशन आदि का भार, श्री भोलानाथ जी अग्रवाल संचालक विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, ने ग्रहण किया है। अतः वे भी साधुवाद के भाजन हैं।

'मुद्रण कार्य में अशुद्धियाँ न रह जायँ' इसका पर्याप्त ध्यान रखा गया है फिर भी प्रिंटिंग सम्बन्धी एवं प्रमाद जन्य त्रुटियाँ रह सकती हैं। अतः पुस्तक में संशोधन आदि के जो भी सुझाव विद्वज्जन भेजेंगे उनका कृतज्ञता के साथ स्वागत किया जायेगा।

—बाबूराम त्रिपाठी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी

प्रायेण सर्व एव संसारिणो मानवाः स्वर्ग मेवाभीष्टतमं मन्यन्ते, यतो हि तत्रोपलभ्यन्ते सर्वाण्येव मानवजीवनोपयोगीनि भोगविलास-साधनानि, न दुःखं तत्र विद्यते, नापि दारिद्र्यम्। परमादि-कविना वाल्मीकिना प्रमाणीकृतम् यत्तस्मात् स्वर्गादपि जननी उच्चतरा गरीयसी च भवति एवमेव जन्मभूमिरपि तस्माद् गरीयसी ।

सन्तीह लोके विविधाः सम्बन्धा अनेके सम्बन्धिनश्च । परमेतेषु सर्वेष्वपि जननी सर्वाधिकं महत्त्व माधत्ते। इयं हि पूज्यानां पित्रा-चार्यादीनामपि पूज्यतमा, यतो ह्यस्याः सन्तति प्रति सहजस्नेहो भवति । सन्ततिरक्षार्थं सा स्वस्वास्थ्यं सुखं सम्पदादिकं वा न गणयति। वस्तुतः शिशुभिः जननीक्रोडे यदपूर्वं सुख मनुभूयते, कैशोरके च यो ह्यभ्युदयकारी परामर्शोऽभिगृह्यते, समुपलभ्यते च यावज्जीवं यन्निःस्वार्थभावेन तस्याः प्राणपणेनापि संरक्षणम्; नह्येत-त्सर्वं सर्वाभीष्टसिद्धिप्रदे स्वर्गेऽपि लब्धुं शक्यते, अतोऽस्ति जनन्याः स्वर्गादपि गरीयस्त्वं सिद्धमेव । अत एवोक्तमभियुक्तैः "नास्ति मातृ-समो गुरुः" "माता परं दैवतम्" एवम्भूतां पूज्यतमां मातर माजन्म सेवमानोऽपि नरो न तस्याः ऋणान्मुक्तो भवितुं प्रभवति, यथाह मनुः —

> यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम् ।
> न तस्य निष्कृतिः कर्तुं शक्या वर्षशतैरपि ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कस्यापि मानवस्य जन्मस्थानं जन्मभूमिरिति कथ्यते । ,जन्म-भूमिरपि जननीव स्वर्गादपि गरीयसी भवति । जन्मभूरपीयं जननीव पालयति लालयति सम्बर्धयति च । जननी तु केवलं जन्मनः कारणं भवति, परं जन्मभूमिरियं मानवस्य कृते शारीरिकविकासस्य स्वास्थ्यस्य अन्नाद्याहारवस्तुसमूहस्य पेयलेह्यादिसमस्तजीवनोपयोगिवस्तुजातस्य च कारण मस्ति । तस्याः प्रेम भवति स्वाभाविकं सार्वत्रिकं प्रतिदानानपेक्षं च । मरणानन्तर मपीयमेव जन्मभूः शरणं प्रयच्छति । इयं हि स्वद्रोहिणोऽपि, अलसानपि, मूर्खानपि, शरणागतानपराधिनोऽपि प्रेम्णा स्वाङ्कमारोपयति पालयति च । को नास्या गरीयस्त्वं प्रत्येति । एव मुपकृतस्य मानवस्य स्वजन्मभूमिं प्रति स्वाभाविकः सम्मानो भवति । अतएव स मरुस्थलवतीमपि कण्टकाकीर्णामपि जीविकासाधनाक्षमामपि स्वजन्मभूमिं न कदापि विस्मरति, यतते च यावच्छक्यं सततं तत्सेवायै । एतदेवास्ति कारणं यन्मातृभूमिसेवासक्तचित्ता नैके देशभक्ताः स्वजन्मभूरक्षणार्थं प्रियान् स्वप्राणानपि जहुः । तिष्ठन्तु तावदन्ये मातृभूमिभक्ताः, को न जानाति प्रातः स्मरणीयं महात्मानं गान्धिमहोदयं लोकपूज्यं तिलकमहोदयं वा । सन्त्यद्यत्वेऽपि वहवो जन्मभूभक्ता येऽहर्निशं प्रयतन्ते मातृभूमिविकासाय तद्रक्षणाय च ।

मातुः मातृभूमेश्च प्रेम क्षुद्राणां सज्जनानाञ्च समानरूपेण भवति । न केवलं मनुष्याः पशुपक्षिणोऽपि स्वजन्मभुवं हातुं नेच्छन्ति । सन्तीतिहासे प्रसिद्धा नैके मातृभक्ता जन्मभूभक्ताश्च । एतेन स्पष्टं यज्जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी भवति ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२

नास्त्युद्यमसमो बन्धुः

जगतीतलेऽस्मिन् द्विविधा जना दृग्गोचरतामायान्ति । एके पुरुषार्थवादिनः परे च भाग्यवादिनः सन्ति । भाग्यवादिनः 'दैवं भाग्यं वा सर्वकार्यक्षमं, सर्वाभीष्टसिद्धिकरं, यत्किञ्चदपि कर्तुं मन्यथा कर्तुं वा दैवमेव बलवत्, "दैवाधीनं जगत् सर्वम्", नेदं दैवमनादृत्य कोऽपि सिद्धि मधिगन्तुं प्रभवति, 'भाग्यं फलति सर्वत्र न च विद्या न च पौरुषम्" इत्युदाहरन्ति । पुरुषार्थवादिनश्च, विविधेषु कर्मसु मानवस्य प्रवृत्तिः स्वाभाविकी भवति । अथ चेयं कर्मणि प्रवृत्ति र्न निरुद्देश्या, यतो हि प्रयोजनमनुद्दिश्य न मन्दोऽपि कर्मसु प्रवर्तते । उद्योगिनं परिश्रमशालिनमेव पुरुषसिंह मुपैति लक्ष्मीः, दैवेन देयमिति तु कापुरुषाणां वचनम्, प्रीणयन्तु नाम मनोरथैरेवात्मानं दैवं परमं मन्यमाना मानवाः, परं कार्यसिद्धिस्तु तेषामुद्योगेन बिना दूरत एव तिष्ठति, न सिद्ध्यन्ति कार्याणि मनोरथमात्रेण । यथोच्यते :—

उद्यमेनैव सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।
नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ।।

अतो दैवमनादृत्यास्माभिः पुरुषार्थो विधेय इत्युदाहरन्ति ।

परमत्र केषाम्मतं समीचीनमिति विचारे ह्यु पस्थिते पुरुषार्थस्यैव प्राधान्यमवधार्यते विद्वद्भिः ।

नहि पुरुषार्थ मन्तरेण भाग्यस्य क्वापि स्थितिः । भाग्यमपि पुरुषार्थदेव प्रभवति, यदि न स्यात् पुरुषार्थः उद्योग उद्यमो वा पूर्वजन्मनि, कुतः सम्भवेद् दैवं भाग्यं वा । नेदं भाग्यमीश्वरेण विधीयते, नापीदं स्वयमेवोत्पद्यते, अतस्तदिदं यदस्माभि र्गतजन्मनि कृतं नान्यत्, तथा चोक्तम् :—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पूर्वजन्मकृतं कर्म तद् दैवमिति कथ्यते ।
तस्मात्पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्ध्यति ॥

एतदालक्ष्य न श्रद्धेयं भाग्यवादिनां कापुरुषाणां दैवम्, यदाश्रित्य कार्यपटु रुद्योगशीलोऽपि जनोऽलसो भवति, न स करोति किञ्चित् स्वस्य परस्य वा हिताय, कर्तु मक्षमो वा भवति, भवति चानादृतो लोकैः, परिहीयते बन्धुभिः, उत्सृज्यते सुहृद्भिः, विनिन्द्यते सद्भिः, प्रतार्य्यते धूर्तैः, पिशुनैः दुर्जनैश्चापि । आस्तां तावदन्यो वराकः, मृगाधिपोऽपि समुद्योगेनैवात्मवृत्तिं कल्पयति, नेच्छामात्रेणैव तन्मुखमाविशन्ति मृगाः । बलवानपि, विद्वानपि, धनवानपि वा नैरन्तर्येणैवोद्योगेन स्वजीविकां विधातु मर्हति नान्यथा । उद्योगेन समो नेतरोबन्धुः कार्यसिद्धिविधायकः । नहि किञ्चिदस्ति यन्नोपलभ्येत उद्योगेन । सर्वं वशेऽध्यवसायिनः पुरुषार्थवादिनः । कृषको यदि नोद्योगमाचरेत्, क्षेत्रकर्षणं बीजवपनं जलसेकं वा यथाकालं न विदधीत, दैवमाश्रित्य गृह मेवा वसेत्, कथं स्यात्तस्य धान्यावाप्तिस्तया च धनागमः । किं वहुना, उद्यमिनस्तु भाग्यमपि परिवर्तयन्ति ।

सत्यप्येतादृशे पुरुषार्थमहत्त्वे दैवमपि न सर्वथा हेयम् । दैवं सर्वथैव विस्मृत्योपेक्ष्य वा न पुरुषार्थः फलति, नापि पुरुषार्थमनादृत्य भाग्येनैकेन सिद्धिरवाप्यते, यथोक्त केनापि नीतिविदा :—

यथा ह्येकेन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत् ।
तथा पुरुषकारेण बिना दैवं न सिद्ध्यति ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३

परोपकाराय सतां विभूतयः

विचित्रचर्चाचर्चिते जगतीतलेऽस्मिन्नवलोक्यन्ते द्विविधा जनाः—सन्तोऽसन्तश्च। यत्रासन्तो जीवन्ति स्वार्थसाधनायैव, स्वोदरपूर्तिमात्रप्रयोजनायैव, शारीरिकवलेन परपीडनायैव, बुद्धियोगेन चाप्यपरेषामपकारायैव, तत्र सन्तस्तु जीवन्ति निसर्गत एव परोपकारायैव, परकार्यसाधनायैव, विद्याबुद्धिवलेन लोकशिक्षणायैव, नैकविधोपायैः परपीडादूरीकरणायैव, स्वकीयैः शमदमादिसद्गुणै र्लोकजीवनाभ्युदयसाधनायैव च। नह्येतेषां सतां मनांसि सत्स्वपि मनोविकारकारणीभूतेषु नैकविधेषु लौकिकाकर्षणात्मकेषु विषयेषु विक्रियामुपयान्ति। व्यवहरन्ति चैते सन्तः परद्रव्येषु लोष्ठवत्, परदारेषु मातृवत्, सर्वभूतेषु चात्मवत्। 'वसुधैव कुटुम्बक मिति सिद्धान्त मूरीकृत्य निजापरभावमुपेक्ष्य चैते सत्पुरुषाः प्रवर्तन्ते लोकव्यवहारेषु, न किञ्चिदपि ते स्वकीयं मन्यन्ते, अपि तु तेषां सर्वस्वं भवति परार्थायैव, लोकाराधनायैव, लोकसम्वर्धनायैव च। स्वार्थमनुद्दिश्य स्वसुखसाधनान्युपेक्ष्य, संलक्ष्य चाधिव्याधिसम्भूतानेकक्लेशाभिभूतान् लोकान् अनाहूता एव ते तानुपेत्य सर्वा एवात्मविभूती स्तदर्थमर्पयन्ति, परं नैतच्चित्रं, यतो हि परार्थमेव समुद्भूतानां, परार्थ मेव जीवनं नयता मेतेषां देवकल्पानां सज्जनानां विभूतयो भवन्ति परोपकारायैव न त्वात्मसुखाय। अनपेक्षितजनगुणदोषा अनपेक्षितशरीराश्चैते सत्पुरुषा विपन्नार्तवचनश्रवणसमकालमेव तत्रोपेत्य मनसा वचसा कर्मणा धनेन शरीरेण चापि तत्क्लेशप्रतीकारं विदधति। न भवत्ययमुपकारस्तेषा मात्मप्रदर्शनाय, नापि लोकाख्यातिलाभाय, न चाप्यधिकारसुखयशोऽभिलिप्सापूरणाय। किमधिकं, नात्र सन्देहावसरः, यत्सतां विभूतयः प्राणिमात्रकल्याणकारिण्यो भवन्ति।

न केवलमुपकारव्यसनमिदं मानवेष्वेव, अपि तु पशुपक्षिवृक्ष-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

लतादिष्वप्येतल्लभ्यते। गन्धवहोऽहर्निशं प्रयाति, प्रकाशतेऽत्र नित्यं मरीचिमाली । निशानाथोऽप्ययमपनुदति नैशं तमः, न भवति व्यथा शेषस्य धरित्रीधारणे, न शैथिल्यमायाति धरित्री चापीयं सर्वचेतनाचेतननिकायभारोद्वहने; नहि गवादिपशवः स्वार्थसाधनाय अमृतोपमं पयो ददति, नहि वृक्षाः स्वयमेवात्मफलान्यदन्ति । नहि वारिवाहाःस्वार्थाय धान्यवृद्धिपरं पयः प्रयच्छन्ति । नहि सरितोऽहर्निशं वहन्ति स्वार्थाय, नापि भूधराः स्वयमेवोपभोक्तु मुत्पादयन्ति तृणादिकम्, अपि तु सर्वेषामेतेषा मनेकविधेष्वेतादृशेषु कार्येषु प्रवृत्तिः परोपकारायैवास्ति ।

न केवलं मानवेषु पशुपक्षिवनस्पतिष्वप्येतदुपकारव्यसन मुद्वीक्ष्यापि यदि न प्रवर्तते मानवः स्वयमेव परदुःखापहाराय, परकार्यसाधनाय, परहिताय च, दुर्भाग्यमे वैतन्नान्यत् । स्वोदरपूर्तिः स्वार्थसिद्धिर्वा नास्ति मानवजीवनस्य परमं लक्ष्यम् । स्वोदरपूरणन्तु न सुदुर्लभम् । काकेनापि चञ्च्वा स्वोदरभरणं क्रियते, शुनापि पिण्डदस्य समक्षं वदनोदरदर्शनेन तच्चरणावलेहनेन, इतस्ततो लाङ्गूलचालनेन च स्वोदरदरी पूर्य्यते, गर्दभेनापि भारोद्वहनेन स्वोदरभरणं विधीयते एव । यदि वाग्घस्तवता शरीरधारिणा मानवेनापि स्वोदरपूर्त्यर्थमेव केवलं प्रयत्नो विधीयते, तर्हि को विशेषः स्यादेतेषु पशुषु पक्षिषु मानवेषु च । अतोऽस्माभिस्सदैव सर्वत्रैव सर्वथैव परोपकारपरै र्भवितव्यमिति ।

४

विद्वान् सर्वत्र पूज्यते

इह जगति समादरकामना पूजाभिलाषा वा निसर्गत एव प्राणिमात्रे संदृश्यते । न केवलं मानवाः कृमिकीटादयोऽपि क्षुद्रजन्तवः संलक्ष्यन्ते समर्चनासमुत्सुकाः, आहारादिदानेन, पालनेन, प्रेम्णा च

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समर्चिता एते स्निह्यन्ति मानवेषु स्वस्वामिषु च, प्रपलायन्ते च तेभ्यो ये द्रुह्यन्त्येतेभ्यः, घ्नन्ति चैतान्। कथाग्रन्थेषूपलभ्यन्ते अश्वादिपशु-कपोतादीनां नैकविधाः कथाः याः प्रमाणीकुर्वन्ति सर्वेषामेतेषां पूजानुरागम्। परं कथं लभ्येत पूजेयम्, कथम्वा मानवः पूजाभाजनं भवेदिति विचारे, इत्येवाभिधीयते यद् गुणा एव पूजास्थानं, न गुणिषु लिङ्गं न च वयः। गुणा हीमे न विद्या मन्तरेण लभ्याः। विद्यावानेव भवति विद्वान्, पूज्यते चायं विद्वानेव सर्वत्र, न धनवान् नापि बलवान्।

परमिह लोके दृश्यन्ते धनिनोऽपि महामहिमशालिनःपूजिताश्चापि। परमत्र नास्त्येषां पूजाकारणं विद्या अपितु धनवत्तैव केवलम्। एतेन विस्पष्टं प्रतीयते यदस्ति वित्तमपि पूजाकारणं न केवलं विद्यैव, अतः कथमिदं यद् विद्वानेव सर्वत्र पूज्यते न धनवानिति। अतः प्रथमं चिन्तनीयमेतत्, यद्विद्याधीनं धनं, धनाधीना वा विद्येति। सन्तीदृशाः कतिपये दृष्टान्ता ये धनापेक्षया विद्याया महत्त्वं प्रमाणीकुर्वन्ति, अथ चान्ये विद्यापेक्षया धनमेव सर्वकार्यसाधनक्षमं प्रख्यापयन्ति। कियन्तो धनिन एकाक्षरमपि न जानन्ति परमत्र दृश्यन्ते ते सर्वैश्वर्यशालिनः सुखेन जीवनं यापयन्तः। मूर्खा विद्याविहीना अपि ते धनिनः पूज्यन्ते लोकैः, न केवलं सामान्यजनैः, अपि तु विद्यावद्भिरपि। सन्ति नैके विद्यावन्तः ऐश्वर्यशालिनामाश्रये जीवनं गमयन्तस्तेषां सेवावृत्तिं कुर्वन्तो लोकेऽद्यापि। अतो नात्र विवादः, यदस्ति धनाधीना विद्या, यतो हि विद्यालभ्याः सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते, विद्यापि काञ्चना-श्रया, जना अपि काञ्चनाश्रयाः, जगदपि काञ्चनाश्रयमेव। तत्कथमिय-मुक्तिः 'विद्वान् सर्वत्र पूज्यते' इति।

वस्तुतस्तु विचारमार्गप्रहितेन चेतसा विद्यैव धनादुच्चतरा प्रति-भाति, विद्यापारङ्गतो विद्वानेव पूजार्हः, न तु धनवान्। अर्थाना मर्जने दुःख, मर्जितानाञ्च रक्षणे, व्यये दुःखं गते दुःखम्, न सुखं कुतोऽप्यर्थ-वतां लोके। न केवल मेतदेव, सन्तु नाम अर्था ऐहिकसुखसाधकाः पर-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मेतै र्न साध्यते लोकोत्तरानन्दो मोक्षो वा। अर्थवन्तो मूर्खा आहार-निद्राभयमैथुनादिकमेव जोवनस्य परमं लक्ष्यं मन्यमानाः साहित्यकला-विहीना भुवि भारभूताः पशुवद् विचरन्ति। धनवतामाश्रये जीवनं नयन्तो विद्वांसो न वस्तुतो विद्वांसः, अर्थलोलुपा एते तथाकथिता विद्वांस एव धनाशया वाग्देवीं नर्तकीमिव द्वारि द्वारि नर्तयन्तो विचरन्ति, न ते बुधजनाख्यापात्रम्। धनं न कदापि विद्यायाः समतां कर्तुं प्रभ-वति, ततोऽधिकं तु कथं स्यात्। सन्तु नाम सर्वाण्यपि लौकिकानि वस्तुजातानि धनाश्रयवन्ति, परं ज्ञानं दर्शनं कलादयो वा न धनै-र्लभ्याः। यदि पूज्यन्ते धनिनः, तर्हि अर्थपरैः धूर्तैः पिशुनैरेव, अथापि स्वदेश एव, परमस्माद् विपरीतं, विद्वज्जनाः सज्जनैः सदाचारिभिः विद्वद्भिः स्वदेशे विदेशे च पूज्यन्ते, यथोच्यतेः—

विद्वत्त्वं नृपत्वं च, नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा, विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥

५

संस्कृत भाषाया महत्वम्

महत्त्वं हि गुणाधीनं भवति, गुणमन्तरेण न सम्भवति महत्त्वा-वाप्तिः। दृश्यन्ते हि लोके महत्त्वशालिनस्त एव, ये सन्ति गुणशालिनः। गुणै र्हि सर्वत्र पदं निधीयते, यत्र कुत्रापि यस्मिन् कस्मिन्नपि दृश्यते महत्त्वं तत्र सर्वत्रैवोपलभ्यन्ते गुणाः। यदस्ति संस्कृतभाषाया महत्त्वं तदस्ति तस्या गुणगरिम्णैव। के ते गुणाः, कीदृगस्या वैशिष्ट्यम्, कानि च सन्ति तानि कारणानि, यानि संस्कृतभाषामिमां महत्त्वशा-लिनीं विदधुः, इत्येतानि सर्वाण्येवात्र संस्कृतभाषामहत्वप्रख्यापने विचारपथमायान्ति।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नात्र मतद्वयं सम्भवति, यदस्ति संस्कृतभाषेयं प्राचीनतमा भाषा। आसीदियं पुरा भारतीयानां लोकप्रिया जनभाषा, यथाभिज्ञायते रामायणमहाभारतादिप्राचीनग्रन्थसमुद्धरणैः, नैकविद्वज्जनोक्तिभिश्च। इयं हि संस्कृतभाषा शैवशाक्तवैष्णवजैनवौद्धादिनानासम्प्रदायेषु अहर्निशमुत्तरोत्तरमुपचीयमानेषु विविधेषु मतमतान्तरेषु सम्विभक्तानामपि स्वस्वमतानुरूपमतिजुषामपि आपाततः परस्परविरुद्धत्वेन प्रतीयमानानामपि, अथ च भारतीयमौलिकसंस्कृत्या परस्परं सम्वद्धानां प्राचीनतमार्यधर्मावलम्बिनां भारतीयानां सर्वेषामप्यस्माकं मानसे 'एको रसः करुण एवेत्युक्तिदिशा एकसूत्रेणैवोतप्रोता सर्वेषामप्यस्माकं समादरास्पदश्चास्ति। भाषयानयैवाद्यापि भारतीय संस्कृते रार्यधर्मस्य च परिपुष्टि र्जायते। प्राचीन काले न केवलं भारतवर्ष एव अपितु भारताद् वहिरपि विभिन्नदेशेषु प्रचारातिशयमुपभुञ्जाना, सर्वासामपि जीवननिर्वाहिकाणामपि विद्यानामाश्रयीभूता, अखिलपुरुषार्थसाधनोपयोगिवाङमयोपजुष्टा आसीदेषा अस्माकं संस्कृतभाषा, नात्र सन्देहः।

सत्स्वन्येषु वैशिष्टचेषु भाषाया अस्या गुरुतरं वैशिष्टचमिदमस्ति यदस्या मेकस्य शब्दस्यानेके समानार्था जायन्ते, शब्दरचनाशक्तिरप्यस्या अपूर्वैव वर्तते। संस्कृतभाषैव सर्वास्वन्यासु प्रान्तीयभाषासु अद्यापि जीवनरसं संचारयितु क्षमते। अस्या भाषाया ज्ञानानन्तरमेव प्रान्तीयभाषाणां ज्ञानं कर्तुं प्रभवन्ति जना नान्यथा। यतो ह्यस्याः शब्दकोशो विशालः सुसम्पन्नश्चास्ति। व्याकरणमप्यस्याः सुसमृद्धं सर्वभाषाव्याकरणातिगं संक्षिप्तमपि अनल्पं सम्पूर्णश्चास्ति। भाषाविज्ञानस्य समालोचनाशास्त्रस्य च सम्यग् ज्ञानाय भाषाया अस्या अपेक्षा सर्वै रेव स्वीक्रियते। नास्ति कोऽप्येतादृशो भावो विषयो वा यो हि नाभिव्यक्ति मायाति भाषयानया। भाषाया अस्या एतादृशवैशिष्टचादेव प्रायः सर्वेऽपि प्राचीनग्रन्था न केवल मार्यधर्मावलम्बिनामेव अपितु अन्यसम्प्रदायजुषामपि, संस्कृतभाषामाश्रित्यैव लिखिता दृश्यन्ते।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सत्यप्येतादृशे महत्त्वे भाषाया अस्या अद्यत्वेऽवनतिरवलोक्यते। शासनाधिकारिभि रन्यैश्चाप्युपेक्षिता भाषेय मधुना अधोगतिं याति। अतोऽस्याः समुद्धाराय अस्माभिरवश्यं प्रयत्नो विधेयः इति।

६

बुद्धि र्यस्य बलं तस्य

शारीरिकं बौद्धिकञ्चेति द्विविधं बलम्, क्वचिच्छारीरिकबलेन क्वचिच्च बौद्धिकबलेन मानवो विविधकार्याणि साधयति। लौकिकेषु धर्माद्यभ्युदयसाधनीभूतेषु कार्येषु यद्यपि वर्ण्यते महत्त्वं स्वस्थस्य शरीरस्य, 'शरीर माद्यं खलु धर्मसाधन मित्युक्तिदिशा च न केवलं जीविकोपार्जनीभूतेषु कार्येष्वेव अपि तु धर्मादिकार्येष्वपि बलवच्छरीरस्यावश्यकत्वं प्रतीयते, तथापि बुद्धिबलमनाश्रित्य न कोऽपि कार्यसाधनक्षमो भविष्यति। न केवलं शारीरिकं बलमेव सर्वकार्यसाधनक्षमं, न चैतन्मावनजीवनस्य परमं लक्ष्यं भवितुमर्हति। यद्येवं, तर्हि बुद्धियोगं बिना मानवशरीरे पशुशरीरे च को विशेषः स्यात्। पशवोऽपि भवन्ति पुष्टशरीरशक्तिसम्पन्नाः, परं बुद्धिहीनत्वादेव ते पराधीनाः, परमुखापेक्षिणः, परानुग्रहजीविनश्च भवन्ति। यत्र मानवः शरीरबलेन सहैव बुद्धिबलमाश्रित्य सदैव स्वच्छन्दं विचरति, स्वातन्त्र्यसुखानि चानुभवति, तत्रेमे बुद्धिहीनाः पशवः स्वामिनिदेशकारिणः, तदाज्ञया गुरुतरभारमावहन्तः स्वाम्यादेशं परिपालयन्तो जीवन्ति। अतो निश्चीयते यन्मानवकार्यसाधने बुद्धिबलमेव प्रधानं, न शरीरवलं, न विद्याबलं, नापि धनबलं वा। सन्तु नामैते शरीरवलादयः कार्यसिद्धौ बुद्धिसहायकाः, परं नैतेषां प्राधान्यम्।

दृढः स्थूलकायः हृष्टपुष्टाङ्गः शारीरिकशक्तिसमन्वितो विद्वानपि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पुरुषो बुद्धियोगं विना न क्षमते सर्वथैव सर्वकार्यसाधनाय, परं बुद्धिवलान्वितो दैहिकशक्तिहीनो दुर्वलोऽपि जनो यदि प्रवर्तते महत्स्वपि कार्येषु, अवश्यमेव साफल्यं यास्यति। बुद्धिवलेनैवाद्यत्वे जनः प्रकृतिविजयायोद्युङ्क्ते, साफल्यञ्चाधिगच्छति। बुद्धिबलप्रभावादेव पराक्रमशालिनो भयावहाः सिंहादयः पशवोऽपि दंशकव्यालसरीसृपादयोऽप्यन्ये जन्तवोऽपि वशमानीता मनुजेन। अद्यत्वे नानाविधा आविष्कारा वैज्ञानिकाश्चमत्कारा मानवबुद्धिबलवैशिष्ट्यमेवाविष्कुर्वन्ति। जगच्चाल्यते बुद्धिबलेनैव। किं वहुना, सर्वशक्तिमानीश्वरोऽपि जनानां बुद्धिवलेनैवाविर्भवति।

इयं हि बुद्धिः मानवजीवनस्य प्रकाशः, अनयैव मानवः सर्वेषु प्राणधारिषु श्रेष्ठत्वं भजते। यदद्यत्वे महाशक्तिशालिनो हिंस्रका अपि पशवः, स्वच्छन्दविहारिणः पक्षिणश्च स्वाम्यादेशं शिरसा वहन्तो विविधाः क्रियाः कुर्वन्तोऽवलोक्यन्ते, मानवबुद्धिबलप्रभाव एवायम्। बुद्धिं बिना लोकोऽन्धवत् प्रवर्तते, पदे पदे स्खलति निपतति च, विवशीभूयावद्ध्यते सांसारिकदुर्धर्षकार्यजालेषु, प्रतार्य्यते पशुभिरपि, उत्सृज्यते स्वजनैरपि, गर्ह्यते सुजनैरपि, किं बहुना, तिरस्क्रियते, विनिन्द्यते, परिहीयते च स्त्रीभिरपि वालैरपीति।

एवं ज्ञायते यद् बुद्धिवलमेव वस्तुतो बलम्, यथोच्यतेः—

बुद्धिर्यस्य वलं तस्य, निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्॥

७

धैर्यं हि महतां धनम्

धैर्यं नाम पुरुषस्य कोऽप्यन्तःसारो भवति। असाध्येष्वपि कार्येषु, दुर्दमनीयास्वपि विपत्सु, अथ च समक्षमुपस्थितेष्वपि शस्त्रग्राहिषु

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शत्रुषु यच्चेतसोऽनुद्वेगः, मनसोऽहार्यनिश्चयः, बुद्धेः स्थैर्यत्वं, तदेव धैर्यं नाम नान्यत् । यदवलम्बनेन पुरुषो निर्भयः प्रवर्तते अननुकूलेषु, उच्चावचेषु, असाध्येषु विविधेषु कठिनात्कठिनतरेष्वपि कार्येषु । यदाश्रित्य पुरुषो न विकम्पते पश्यन्नपि दुर्दमनीयमपि विपज्जालम् । यदवलम्ब्य पुरुषो न प्रतिपत्तिमूढो भवति समक्षमवलोकयन्नपि विरोधिभावाकुलितमपि जनसमुदायम् । यदाश्रय मुपेत्य पुरुषो न कर्त्तव्याकर्त्तव्यविमूढ़ो भवति अवगच्छन्नपि अन्यायेनोपस्थापितमपि दुर्भेद्यं दुश्चक्रम् । नहि धैर्यधनाश्रयः कदापि नैराश्यमवलम्बते समुपस्थितेष्वपि संकटेषु, न न्याय्यात् पथः प्रविचलति, नष्टधनाश्रयोऽपि न कदापि दैन्यमुपयाति । मनोविकारकारणीभूतेषु लौकिकेषु विविधेष्वपि विषयोपभोगेषु नहि तच्चेतो विक्रियामुपगच्छति । सन्तोषामृतपरितृप्तं हि तच्चित्तं नह्यर्थेषु लुभ्यति; नापि तत्प्रलोभ्यते महतीभिः स्वार्थसाधनपरैः पिशुनै रूपस्थापिताभि रुपदाभिरपि ।

वस्तुतः त एव धैर्यवन्तो महन्तः ये सुखेषु दुःखेषु वा एकरूपेणैव तिष्ठन्ति, न विकृतिमुपयान्ति मनागपि दुर्गता अपि, लीलावतीनां कटाक्षैराकृष्टा अपि, घोरायामप्यापदि निपातिता अपि, धनराशिभि र्विलोभिता अपि, दुर्जनै स्तिरस्कृता अपि, भयावहहिंस्रकपशुभिरुद्वेजिता अपि च ।

धैर्यवतां महतां स्वभाव एष यत्ते प्रारब्ध मङ्गीकृतं वा कार्यं मनवसाय्य न तस्माद् विरमन्ति । कार्यसाधनमार्गे निपतितान् विघ्नानुपेक्ष्य अविश्रान्तमनसा ते स्वकार्यस्यान्तं गच्छन्ति ।

सामान्यतस्तु सर्व एव महन्तो धैर्यशालिनो भवन्ति परं कार्ये विकारहेतौ वा समुपस्थिते धैर्यवतां परीक्षणं भवति । एतद्विषये कतिपये दृष्टान्ताः समुदाहृता नीतिविद्भिः—

उपस्थिते विप्लव एव पुंसां, समस्तभावः परिमीयतेऽतः ।
अवाति वायौ नहि तूलराशे, र्गिरेश्च कश्चित् प्रतिभाति भेदः ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपिकाले, धैर्यात् कदाचित् स्थिति माप्नुयात् सः ।
जाते समुद्रेऽपि च पोतभङ्गे, सांयात्रिको वाञ्छति तर्तुं मेव ॥

अतो नात्र सन्देहः, यद् विपदुत्तरणतरणि धैर्यम्, इदमेव च महतां महद् धनमिति ।

८

मम महाविद्यालयः

'विद्ययाऽमृतमश्नुते' 'सा विद्या या विमुक्तये' इत्यादिमहर्षिवचनेषु यादृशी विद्यायाः परिकल्पना विद्यते सा लभ्यते महाविद्यालयेषु । अथ च 'सा विद्या या अर्थकरी, भोगकरी, यशः सुखकरी च' इत्यादिनीतिविद्वचनेषु च यादृशी विद्या अपेक्ष्यते तादृशी अपि अधिगम्यते महाविद्यालयेष्वेव । अतो निर्विवादमेतद् यद् विद्यालयाः सर्वविधविद्यास्पदम् । अत्राध्येतारश्छात्राः पारयन्ति सर्वविधा एता विद्याः परिगृहीतुम् ।

ममापि महाविद्यालयः सर्वविद्यानां कलानाञ्च आस्पदम्, अत एवायं मया सहान्यैरपि अध्येतृभिश्छात्रैः, विविधेषु विषयेषु लब्धप्रतिष्ठै र्विद्वद्भिरपि समाद्रियते । समागच्छन्ति चात्र छात्राः सुदूरदेशादप्यध्ययनाय, विद्वांसोऽप्यध्यापनाय ।

महाविद्यालयोऽयं मम अस्मिन्नेव पत्तने संस्थापितोऽस्ति । बहुविधजनसंकुलान्नगराद् वहिरस्य स्थितिरप्यस्य शिक्षानुकूलं निर्विघ्नं विद्याध्ययनं निर्दिशति । महाविद्यालस्यास्य सन्ति विशालानि भवनानि, विद्युज्ज्योतिःप्रकाशिता, विद्युद्व्यजनैश्च समलंकृताः, सम्मार्जनविमलीकृता आयताश्चाध्ययनकक्षाश्च । काष्ठमयानि, वेत्रमयानि,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुभूषितानि, विविधानि, आसनानि पङ्क्तिवद्धानि परितोऽलंकुर्वन्ती मानि अध्ययनस्थानानि । कक्षाणां पुरतो भाति कुसुमोपवनम्, तत्रारोपिता हरिताः पत्रपुष्पोपराजिता विविधाः पादपा लताश्चास्य शोभां सम्वर्धयन्ति ।

महाविद्यालयस्यास्य नातिदूरं कतिपये छात्रालयाः सन्ति, यत्र छात्रा विशेषतोऽन्यप्रान्तीयाश्छात्रा निवसन्ति । संलग्नेषु क्रीडाक्षेत्रेषु अवकाशसमये छात्राः सम्मिलन्ति क्रीडन्ति च । प्रधानाचार्यमहोदयोऽस्य महाविद्यालयस्य महान् धार्मिको विद्यानिष्णातः सद्व्यवहारशीलः प्रबन्धपटुश्चास्ति । अन्येऽप्याचार्याः स्वस्वविषयेषु विशेषज्ञा नियमपरा अध्यापनरुचयः स्वकार्यदक्षाः पुत्रनिर्विशेषं वात्सल्य माश्रित्यास्मानध्यापयन्ति । पाठनपद्धतिस्तेषां हृद्या, व्यवहारश्च स्नेहपरः, भाषणञ्च मधुरं, शिक्षाप्रदम्, प्रकृतिश्चापि तेषां साध्वी, सरला, गम्भीरा च ।

महाविद्यालयस्यास्य छात्रा न केवलम् अध्ययनशीला उत्कृष्टमतयः, व्यवहारपटवः, संयमिनः, परीक्षासु विशेषस्थानजुषः, नियमवन्तः, अनुशासनानुगामिनः एव अपि तु ते तथैव क्रीड़ाक्षेत्रेषु, वादविवादेषु, सम्भाषणेषु, समाजसेवासु, विविधोत्सवप्रबन्धेषु संगीतवाद्यनाटयकाव्यादिकलासु च ख्याति मध्यगच्छन् ।

अतो नेयमत्युक्तिः यन्महाविद्यालयोऽयं सुरम्योद्यानभवनकक्षाछात्रावासक्रीडाक्षेत्रपुस्तकालयादिदृष्टया शिक्षाव्यवस्थापरीक्षाफलादिदृष्टया च परिपूर्णः, सुविख्यातः, उत्तरोत्तरं प्रवर्धमानश्चास्ति ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

६

स्वतन्त्रभारते संस्कृतमहत्त्वम्

संस्कृतभाषाया महत्त्वविषये तु नाद्यापि कोऽपि विवादः। नात्र मतद्वयम्, यत् संस्कृतभाषैव प्राचीनतमा भाषा। भाषायामस्यामेवाद्यापि विद्यमाने ऋग्वेदामलदर्पणे प्रभवामो वय मवलोकयितुं प्राचीनतमस्य तदुत्तरकालस्य च समाजस्य जीवज्जाग्रच्च महनीयं स्वरूपं नान्यत्र। नान्यत्किञ्चित् साहित्यमियत्प्राचीनम्। संस्कृतवाङ्मयस्याध्ययनेनैव पारयामो वयं पुरातनीं सामाजिकव्यवस्थां राजनीतिदशां सांस्कृतिकीं चावस्थां सम्यगभिज्ञातुम्। इदमेव वाङ्मयं मानवजीवनोपयोगिविविधविषयव्याख्यापरत्वात् सर्वाङ्गीणं भवितु मर्हति। मानवजीवनस्य परमोपयोगिनो धर्मार्थकाममोक्षाश्चत्वारोऽपि पुरुषार्था वाङ्मयेऽस्मिन्नेव सविस्तरं विवृत्तिमापन्ना दृग्गोचरतामुपयान्ति। नेयमत्युक्तिः यत्संस्कृतसाहित्ये मानवतायाः सकलाप्यभिव्यक्तिः, कलायाश्च सकलमपि रूपं, जीवनस्य परमोज्ज्वलं स्वरूपं च स्फुटं परिलक्ष्यते।

परमत्र नाद्य संस्कृतभाषामहत्त्ववर्णन मपेक्ष्यते, अपेक्ष्यते त्वत्र स्वतन्त्रभारते तस्या महत्त्वप्रख्यापनमेव। कस्याविदितं यदासीत् स समयः,यदेयं भाषा सर्वत्रापि, न केवलं भारतवर्षे एव, अपि तु भारतेतरदेशदेशान्तरेष्वपि सर्वेषामेव समादरभाजनं जाता, एवञ्चेयं प्रचारातिशयमनुप्राप्ता भारतवर्षस्य शुभ्रं यशः समन्तात् पृथिव्यां प्रसारयति स्म। अद्यापि सुदूरवर्तिषु द्वीपेषु समुपलभ्यमानैः प्राचीन संस्कृतग्रन्थरत्नैः, देवालयखण्डैः, संस्कृतशिलालेखै र्वापि भाषाया अस्या' महत्त्वं समुद्घोष्यते। परं खेदस्य विषयोऽयम् यदियमेवास्माकं पारवश्यकालेऽधोगतिमनुप्राप्ता, फलतः कालान्तरे इयं सर्वथा अव्यवहरणीया जीर्णा शीर्णा जर्जरिता चाभवत्। शनैः-शनैः अस्या नानाविधविद्यानामाश्रयीभूत मनल्प मनवधि च प्राचीनं साहित्यमपि विलुप्तप्रायं जातम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एतादृशे विषमेऽस्या ह्रासकालेऽपि सर्वेषा मेव संस्कृतभाषाजुषां जनानामासीदियमाशा, यत्पुनरप्यस्माकं स्वातन्त्र्यकाले यदा अधिकारिणोऽन्ये चाप्यस्या महती मुपयोगिता मनुभविष्यन्ति तदेयमवश्यमेव समुन्नतपदमलंकरिष्यति । परमद्यत्वेऽपि, यद्यपि सर्वं एवास्याः परमोपयोगित्व मवगच्छन्ति, नेयं समुन्नतिपदमनुप्राप्ता संलक्ष्यते । शासनाधिकारिणामेवोपेक्षा अत्र कारणम् । किमस्ति कोऽप्येतादृशो विषयो भावो वा यो नाभिव्यक्तिमायाति संस्कृतभाषया ? किमस्ति वा कार्यं यदनया न कर्तुं शक्यते ? तथापि नेयं यथोचितामुन्नतिमधिगच्छति । अतः अस्या अनन्यसाधारणं वैशिष्ट्यं विचिन्त्य, अस्याः स्वतन्त्रे भारते तु सर्वाधिकं महत्त्वञ्च समीक्ष्य सर्वैरप्यस्माभिः अस्याः समुन्नतये सत्प्रयत्नोऽवश्यमेव विधेय इति ।

१०

सत्संगतिः

मानवः स्वभावत एव अनुकरणप्रियः संसर्गशीलश्च भवति । नहि चिराय स विविक्त मासेवते । समाजस्याङ्गभूतो हि मानवः समाज एवोत्पद्यते वर्धते चात्रैव । अतएव मानवजीवने समाजस्य विविधानां परिस्थितीनां यथाकालं परिवर्तनशीलानामवस्थानाञ्च महान् प्रभावोऽभिलक्ष्यते । आदत्ते हि मानवो वाल्यादेव नानाविधान् सामाजिकान् गुणान् दोषान् च, इच्छन्नपि स न तानामूलाद् विहातुं पारयति । अत एवोच्यते 'संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति' । समाजस्य संगतिरियं सुदुर्निवार्या भवति ।

दुर्जनैः सह संसर्गादियमेव संगतिः कुसंगतिरित्याख्ययाभिधीयते,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सज्जनानाञ्च संसर्गादियमेव सत्संगतिरित्याख्यायते । द्वयोरप्यनयोः स्पष्टं प्रभावोऽभिलक्ष्यतेऽस्माकं जीवने ।

इयं हि सत्संगति र्जनानामखिलकार्यसाधनक्षमा, मानवीयसर्वदोषापहारक्षमा, शीलसदाचारादिगुणाधानक्षमा चास्ति । अस्या महता प्रभावेण दुर्जनोऽपि सुजनायते, सपत्नोऽपि स्वजनायते, दुर्बुद्धोऽपि सुबुद्धो भवति, दुर्वृत्तोऽपि सुवृत्तो भवति । यथा जलेनाशु मलिनान्यपि वस्त्राणि सुनिर्मलत्व मुपयान्ति तथैव लोके सत्संगतिमहिम्ना पापोऽपि पुण्यशीलः, मूर्खोऽपि विद्वान्, शिष्टोऽपि विशिष्टोऽनादृतोऽप्यादृतो भवति ।

सत्संगतिरियं न केवलं मानवेषु अपि तु सर्वेष्वेव चेतनाचेतनेषु समानमेव प्रभावमुत्पादयति । स्वर्णसत्संगतिप्रभावेण मरकतमणिरिव राजते स्वर्णाङ्गुलीयके संसक्तो नीलकाचः । पारसाख्यपाषाणसत्संगत्या क्षुद्रोऽपि लौहः शोभनं सुवर्णं स्वर्णमेव जायते । गंगोदके सम्मिलितानि नदानां नदीनाञ्चाविलानि जलानि स्वच्छानि पवित्राणि पूज्यानि पेयानि च भवन्ति । क्षुद्रः कीटोऽपि पुष्पसत्संगतिं मवाप्य देवानां राज्ञाञ्च मूर्धानमारोहति । अत एवोच्यते –

सद्भि रेव सहासीत सद्भिः कुर्यात् संगतिम् ।

स्वर्गसुखादपि सत्संगसुखं श्रेष्ठं गणयन्ति साधवः । मुनिवाल्मीकेः, महात्मनः कबीरदासस्य, सूरदासस्य चाख्यानं कस्याविदितम्, एते महात्मानः साधुजनसम्पर्कमवाप्य परां गतिं लेभिरे । एवं नात्र सन्देहावसरः यत्सत्संगतिरेव सर्वकामान् पूरयितुं क्षमते, यथाहुः सुधियः—

कल्पद्रुमः कल्पितमेव सूते, सा कामधुक् कामितमेव दोग्धि ।
चिन्तामणिश्चिन्तितमेव दत्ते, सतां तु संगः सकलं प्रसूते ।।

एतदभिलक्ष्य अस्माभि र्दूरत एव परिहरणीया दुष्परिणामशालिनी दुर्वहा दुर्निवार्या दुर्भगा दुःसंगतिः, समाश्रयणीया च सततं सज्जनमनोऽभिरामा सत्संगतिः । अतः सत्यमेवेदम्—सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ।

२

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

११

तीर्थ यात्रा वर्णनम्

एकदा विद्यालयस्यावकाशसमये कतिपयैश्छात्रै र्मिलित्वा कस्यचित् सुरम्यस्य तीर्थस्थानस्य यात्रां विधातु निश्चयः कृतः । अथ तैः सर्वसम्मत्या काशीतीर्थयात्रायै अन्तिमनिर्णयो विहितः । माघमासस्यामायां तिथौ वयं स्वस्वगृहेभ्यः अत्यावश्यकानि यात्रोपयोगीनि सकलानि वस्तूनि आदाय अश्वशकटसाहाय्येन वाष्पयानविश्रामस्थानं प्राप्ताः । यथाकालञ्चागतं वाष्पयानमध्यारुह्य प्रस्थिता वयम् । पथि वेगवति याने स्थिता वयं बहुविधेन हास्येन, मनोविनोदकारिणा संगीतेन, निरुद्देश्येन कोलाहलेन च परमानन्दममन्द मनुभवन्तो, दृष्टिपथमागतानि बहुविधानि प्रकृतिमनोहराणि दृश्यानि साश्चर्यमवलोकयन्तो, यत्र तत्र फलपुष्पपत्रभारसम्भरितेषु पादपेषु विहंगानां कलरवं श्रुतिपथ मानयन्तो, गुल्मतरुलतासु च मधुमत्तमधुकराणां श्रुतिमधुरानालापान् श्रावं श्रावं हर्षातिरेकेण विकसितमुखारविन्दा यात्रासुखमन्वभूम ।

तत्र च कुत्रचिच्छस्यश्यामला भूमिः, क्वचित् पक्वधान्यविशेषैः पीतवर्णानि क्षेत्राणि, क्वचित् हरितं हरितं घासं चरन्त्यो गावः, क्रीडापराश्च मृगशावकाः, क्वचिच्च स्वच्छजलवाहिन्यो नद्यो मानसमाह्लादयन्ति स्म । एवं वनोपवनानां मनोहराणि दृश्यानि दर्शं दर्शं प्राप्ता वयं काशीतीर्थम् ।

परितः प्रवहन्ती कलकलनिनादिनी भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी भगवती भागीरथी तीर्थस्यास्य शोभां वर्धयन्ती सर्वप्रथमं दृग्गोचरतामुपयाति । स्नातुकामा बयमपि भागीरथ्यास्तट मनुप्राप्ताः । एकतस्तत्रास्यास्तीरसमाश्रिताः स्नानपूजापरा बहवः साधवः सन्यासिनश्च, अपरतश्च वहवोऽसहाया अनाथा अङ्गविकला भिक्षान्नोपजीविनो याचकाश्चास्माभिरवलोकिताः । क्कचिच्छ्रुतिमधुरा गीतयः, क्वचिद् भागवतै र्विधीय-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मानानि हरिनामसंकीर्तनानि, क्वचिद् दैन्यं दुष्कृतं दूरीकुर्वन्ति व्यासवरिष्ठै र्वाच्यमानानि पुराणानि, क्वचिन्महात्मनां भागीरथीतीरस्थिततृणोटजस्थितानां सदुपदेशाः श्रुतिपथमस्माकमायान्ति स्म । केचिदत्र विमले वारिणि तरन्तः, केचिन्नौकाभि र्विहरन्तः, केचन स्नानं संध्योपासनादिकञ्च कुर्वन्तः आसन् । बयमपि स्नात्वा पण्डाख्यपूजकेभ्यो दक्षिणाञ्च दत्त्वा भगवतो विश्वनाथस्य दर्शनं कृतवन्तः ।

भक्तिज्ञानवैराग्यसाधकैः महात्मभिः मुमुक्षुभिः सन्यासिभिश्च विविधविषयपारङ्गतैः महनीयैः विद्वद्भिश्च कृतास्पदां, संस्कृतविद्याकेन्द्रीभूतां, मुक्तिशक्ति प्रदायिनीं, महामहिमशालिनीं, विविधै र्देवमन्दिरैः शिक्षाकेन्द्रै श्च विराजमानां काशीं याथातथ्येन वर्णयितुं न कोऽपि पारयति । एवं दिनत्रयं तत्र निवासं विधाय प्रत्यागता वयं स्वनिवासस्थानमिति ।

१२

जन्मभूमिः

लोकेऽस्मिन् सत्स्वपि नानाविधेषु सम्बन्धेषु सम्बन्धिषु च जननी सर्वाधिकं महत्त्वमावहति । कारणञ्चास्येदमस्ति यन्मातुः स्वसन्ततिं प्रति नैसर्गिकः स्नेहो भवति । सन्ततिवत्सला जननी सन्ततिरक्षार्थं नात्मसुखं बहुमन्यते, न स्वस्वास्थ्यमपेक्षते, नापि अन्यत् किमपि भौतिकं वस्तुजातं गणयति, अतएव सा पूज्यानामपि पूज्यतमा गण्यते । आजन्म तत्सेवापरोऽपि नरः नहि मातुः ऋणान्मुक्तो भवितुमर्हति ।

एवमेव मातृभूमिरपि सर्वेषामेवास्माकं समादरभाजनम् । यस्मिन् कस्मिन्नपि स्थाने देशे प्रदेशे वा मानवैः जन्म गृह्यते तदेव स्थानं तेषां

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जन्मभूमिः कथ्यते। यथा जननी स्वर्गादपि गरीयसी भवति तथैव जन्मभूमिरपि न केवलं गरीयसी एव अपि तु स्वर्गादपि प्रेमास्पदं भवति। जननी भवति जन्मनः कारणं परं जन्मभूमिरियं मानवस्य कृते शारीरिकविकासस्य स्वास्थ्यस्य अन्नाद्याहारवस्तुजातस्य समस्तस्य आस्वाद्यपेयलेह्यपदार्थजातस्य च कारणं भवति। जननीव मातृभूमेः नैसर्गिकं प्रतिदानानपेक्षं प्रेम भवति। सा आजन्म अस्मान् पालयति लालयति वर्धयति च। मूर्खेभ्योऽपि सेवाविमुखेभ्योऽपि अलसेभ्योऽपि प्राणिभ्यः इयमाश्रयं ददाति। नैतावन्मात्रम्, मरणानन्तरमपि जन्मभूमिरियं शरणं प्रयच्छति। एवमुपकृतस्य मानवस्य स्वमातृभुवं प्रति स्वाभाविकः सम्मानो भवति। भवतु नाम जन्मभूमिः जीविकादानाक्षमा, कण्टकाकीर्णा, जीर्णा, शीर्णा, जर्जरिता, परवशीकृता, शून्या, निर्धना, सुखसाधनसामग्रीविरहिता, अधोगता, शत्रुभिराक्रान्तापि च परं मानवो नह्येनां विस्मरति, अवसरे लब्धे स त्वरितमेव स्वमातृभूमिक्रोडमायाति, वन्दते, सेवते चेमाम्।

एतेनैव स्वाभाविकेन जन्मभूमिप्रेम्णा वशीकृतचित्ता मातृभूमिरक्षापरायणाः कियन्तो वीराः पुरुषा मातृभूमिरक्षार्थं शत्रुभिः सह घोरं संग्रामं विधाय स्वप्राणानपि अत्यजन्। न केवलं मानवानां सर्वविधानां प्राणिनां स्वजन्मभुवं प्रति एतादृगेव प्रेम भवति, तेऽपि सहसा न त्यजन्ति जन्मभूमिम्। मानवस्य लोके तावदेव सम्मानः, तावदेव तस्य यशो वा यावत् स स्वजन्मभूमिभक्तः, स्वमातृभूमिसेवातत्परः, स्वदेशरक्षानिरतस्तिष्ठति। दयादाक्षिण्यादिषु सत्स्वपि अन्येषु सद्गुणेषु जन्मभूमिभक्तिः जन्मभूमिसेवा वा मानवस्य सर्वाधिकं वैशिष्ट्यमावहति। यथोच्यते—

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया।
देशभक्त्यात्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भव॥

यूनां छात्राणान्तु जन्मभूमिरक्षणं परमं कर्तव्यमस्ति, नेयं तैः परोपकारिणी जननीव मातृभूमिः विस्मरणीया अपि तु सदैव अस्याः समुन्नतये प्रयत्नपरैर्भवितव्यमिति।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१३

समाज सेवा

मानवो निसर्गादेव सामाजिकः प्राणी । यस्मिन् समाजे तेन जन्म गृहीतं तस्मिन्नेव तस्यावस्थितिः अभ्युदयकारिणी सुखकरी च भविष्यति । यद्यपि मानव एकाकी एवोत्पद्यते, मरणादूर्ध्वं च एकाकी एव गच्छति, परं यावल्लोके तिष्ठति तावन्नहि स एकाकी भूत्वा स्वजीवनं नेतुं पारयति । समाजसम्पर्कं विना न स क्षणमपि स्थातुं क्षमते ।

वस्तुतः समाज एव मानवस्य संरक्षको भवति । समाजादेव स तानि सर्वाण्येव वस्तुजातानि लभते यानि सन्ति परमोपयोगीनि तस्य जीवनकालयापनाय । समाज एव मानवं त्रायते विविधाधिव्याधिभ्यः शत्रुभ्यश्च । जराजर्जरितं, व्याधिपीडितं, शत्रुभिः समाक्रान्तं, धनविरहितं निःसहायमेनं त्रातुं समाज एवागच्छति नान्यः । मानवजीवनं समाजसापेक्षं भवति । तस्य जीवनस्य सर्व एव विधयः समाजसापेक्षा एव वर्तन्ते । समाज एव जनं पालयति वर्धयति च । समाजसाहाय्येनैव मानवो विद्यां धनं गुणादिकं च लभते, यतः विकासशालिसमाजे विद्याधनगुणादिकं सर्वमेव ऐहिकं वस्तुजातं भवति । समाजाद्बहि र्न क्वापि मानवस्य स्थितिः । समाज मनादृत्य, सामाजिकान् नियमानुल्लंघ्य, एकाकिन मात्मान मेव सर्वज्ञं सर्वशक्तिमन्तं सर्वकार्यक्षमं मन्यमानो यदि मानवः किञ्चित् करोति, न स साफल्यमधिगमिष्यति । एतेन मानवस्य कृते समाजस्य महत्त्वं तदुपयोगित्वं तदुपकारित्वं वा स्पष्टमेव प्रतीयते । जानन्नप्येतद् यो नापेक्षते समाजं, न स सामाजिकः प्राणी भवितुमर्हति ।

यदि समाजो मानवं तस्याङ्गभूतं सामाजिकं प्राणिनमेव मुपकरोति तर्हि मानवस्यापि समाजं प्रति तद्रक्षणाय तत्सम्वर्धनाय तत्साहाय्यविधानाय च कर्तव्यं भवति "समाजसेवा भवतीश्वरसेवा" इति यदुच्यते तन्नात्युक्तिपरम् । योऽस्मानुत्पादयति पालयति वर्धयति च स एव

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ईश्वरः, यतः समाजेन मानवस्य कृते एतत्सर्वं क्रियते, अतः समाज एव ईश्वरः, नात्र सन्देहः । ईश्वराराधनं यद्यस्ति अस्माकं धर्मः, तर्हि समाजस्यापि सेवा भवति अस्माकं धर्मः । धर्माचरणेन यथा भवति अभ्युदयावाप्तिः, तथैव समाजसेवया लभ्यते महानभ्युदयः । कथमियं समाजसेवा विधातव्या इति विचारे, सामाजिकनियमानां पालनमेव प्रथमं विचारपथ मायाति । सर्वेष्वेव समाजेषु समाजस्य सञ्चालनाय उत्तरोत्तरं तद्विकासाय च भवन्ति कतिपये नियमा निर्धारिता महनीयैः अनुभवशीलैः वयोवृद्धैः विद्वद्भिः । समाजे न कदापि अव्यवस्था प्रसरेत्, न कदापि कोऽपि बलवान् दुर्बलं हन्यात्, न कदापि कोऽपि कस्यापि चौर्य्येण धनं, वलात् स्त्रियं वापहरेत्, न कदापि कुत्रापि अनीतिप्रचारो भवेत्, अपि तु सर्वं एव सुखिनः सन्तु, सर्वं एव निरामया भवन्तु, सर्वं एव आधिव्याधिविरहिताः स्वस्वकर्मप्रवृत्ता भवन्तु, इत्येतदर्थमेव समये समये अनेकविधाः समाजकल्याणपरा नियमाः निर्मीयन्ते समाजेनैव समाजस्य कृते । अतः एतेषां नियमानां यथावत् पालनमेव भवति समाजसेवा । समयस्य परिवर्तनशीलगत्या सहैव समाजोऽपि परिवर्तनशीलो भवति, परिवर्तिते समाजे तन्नियमा अपि परिवर्तन्ते; अतः परिवर्तितानामेतेषां नियमानामनुसारेण समाजानुवर्तनमेव भवति समाजसेवा, सा अवश्यमेव विधातव्या सर्वैरेवास्माभिः सामाजिकैः प्राणिभिरिति ।

१४

रम्या रामायणी कथा

यथाद्यत्वे महर्षिवाल्मीकेराद्यकवित्वे तत्कृते वा रामायणस्याद्यकाव्यत्वे न कस्यापि सहृदयस्य सामान्यजनस्य वा विप्रतिपत्तिस्तथैव

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वाल्मीकिकृतरामायणकथायाः रम्यत्वविषयेऽपि न कस्यापि विप्रतिपत्तिरालक्ष्यते । सर्व एव, काव्यरसाभिज्ञाः, कथारसाभिज्ञा, भारतीयसांस्कृतिकवैशिष्ट्यज्ञानाभिलाषिणः, प्राचीनेतिवृत्तपरिचयाभिमुखा, अथ च रसानभिज्ञाः सामान्या अपि जना रामायणकथायाः स्वस्वदृष्ट्या रम्यत्वं प्रतिपादयन्ति । वस्तुतस्तु नेयमत्युक्तिः यद्रामायणे तत्सर्वमेवास्ति यदपेक्ष्यते लौकैः । तत्रास्ति उत्तमकाव्यत्वम्, तत्रास्ति आद्यन्तं परिवहन् करुणरसनिष्यन्दः, उपमाद्यलंकाराणां स्वाभाविकः प्रयोगः, प्रसादादिकाव्यगुणानां सौन्दर्यम्, यथास्थानं रसानुगुणं छन्दसां प्रयोगः । सामान्यजनानां कृते स्थाने स्थाने सरसः कथाप्रवाहः, नीतिविदां कृते प्रसंगतः पात्राणां वार्तालापावसरे लोकसामान्यशिक्षापरा नीतिः, संस्कृतीतिहासजिज्ञासावतां कृते संस्कृतेर्भव्यं स्वरूपम् अथ च इतिवृत्तम् । एतदेवाधः पृथक्-पृथक् निर्दिश्यतेः—

काव्यत्वदृष्ट्या तु रामायणकथा अस्त्येव परमरमणीया । अत्र हि करुणो रसः प्राधान्येनाभिव्यक्तः । यथोक्तं कालिदासेन रघुवंशमहाकाव्ये 'निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः, श्लोकत्वमापद्यत यस्य शोकः ।' तथा च ध्वनिकारेणापिः—

"क्रौञ्चद्वन्द्ववियोगोत्थः शोकः श्लोकत्वमागतः"

सर्वत्रैवात्र विशिष्टानां भावाना मुदात्तता, उपमोत्प्रेक्षारुपकानां साधनरूपेण प्रयुक्ताना मन्येषामप्यलंकारणामद्भुतं हृदयग्राहि सौन्दर्यम्, नवनवानां परमरम्यत्वविशिष्टाना मुदात्ताना मथ च स्वभावसिद्धानां कल्पनानां प्राचुर्य्यम्, प्रसादमाधुर्यादिगुणानां रसानुगुणं प्रयोगकौशलम्, वाह्याभ्यन्तरप्रकृतेः सम्यक् निरूपणम्, छन्दसां यथा स्थानं विनियोगः, प्रबन्धपाटवम्, भाषासौन्दर्यम्, वर्णनसम्भाषणादिषु औचित्यपरिपालनम्, इत्यादयः काव्यगुणाः सर्वत्रैव रामायणकथायाः रम्यत्वं वर्धयन्ति ।

न केवलं काव्यत्वं, रामायणकथायाः रम्यत्वे, तत्र रामादिलोकविश्रुतपात्राणां चरित्रचित्रणमप्यस्ति कारणम् । यथैव काव्यत्वसंयोजने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तथैव चरित्रचित्रणेऽपि आद्यकवे: प्रतिभा अनुपमेया एव। न कुत्रापि तस्य पात्रसृष्टिः निर्जीवा व्यक्तित्वविरहिता वा संदृश्यते। यतोऽस्ति चरित्रमेव मानवताया निकषः, अतएव महर्षिणा चरित्रचित्रणे स्वकाव्यप्रतिभाया मनोरमो विनियोग: कृतः। रामायणकथाया एतादृशमेव रम्यत्वं मनसि निधायाभिहितम् :—

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति॥

एतदतिरिक्तं रामायणे, प्राचीनभारतीयसंस्कृतेः समुज्ज्वलं निरवद्यं स्वाभाविकं स्वरूपम्, मानवानामादर्शनिदर्शनम्, प्रकृतिदृश्यानां रमणीयत्वम्, सदाचार लोकव्यवहारोपशिक्षणत्वञ्चेत्यादीनि अन्यान्यपि वैशिष्ट्यानि रामायणकथायाः रम्यत्वं प्रतिपादयन्ति। न तत्रास्ति किमप्यरमणीयम्, अपितु सर्वं रम्यमेवेति।

१५

भारतमहिमा

भारतवर्षस्य महिमा वस्तुत: सर्वदेशमहत्त्वातिशायी। मानवस्य जीवनयात्रासाफल्याय ऐहिकामुष्मिकसुखाय यानि वस्तुजातानि सन्त्यपेक्षितानि तानि सर्वाण्येवात्रोपलभ्यन्ते। नहि किञ्चिदप्यत्रालभ्यं यदि मानवो यत्नमाचरेत्। अत्र विराजते नगाधिराजो हिमालयः, अस्मादेव गंगाप्रमुखा नद्यो विनिःसृत्य भारतभुवं पुनन्ति, आभ्यः प्रभूता अन्याः सरितश्च जलेन क्षेत्राणि अभिसिच्य विविधान्नानि समुत्पादयन्ति, भूमिञ्च हरितीकुर्वन्ति, अतएव शस्यश्यामला देशस्यास्य भूमिरियं सर्वेषां मनांस्याह्लादयति। हरितं घासं चरन्त्यो

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गावः महिष्यश्च अमृतमयेन क्षीरेण अस्मान् पालयन्ति वर्धयन्ति च। दक्षिणदिग्विभागे विराजमानो विन्ध्यगिरिरपि एवमेव अस्माकं संरक्षको भवति।

मनोरमा प्रकृतिरपि देशस्यास्य सर्वचित्ताह्लादिनी। क्वचिदुपवनानि मनोहराणि यथासमयं विकसितैः फलपुष्पभारनतैः लतापादपैः सुशोभमानानि दर्शकजनानां चेतांसि मोदयन्ति, यथाकालं समेत्य षड् ऋतवो देशमिमं प्राकृतिकसौन्दर्यविभूतिदृशा सर्वातिशायिनं विदधति। न चात्र शीताधिक्यं नापि ग्रीष्मबाहुल्यं, न चात्रानावृष्टिः नाप्यतिवृष्टिः, न चात्र जीवनोपायभूतान्नाद्यभावः, नापि स्वास्थ्यानुकूलजलवायुप्राप्तिरपि सुदुर्लभा।

एवम्भूतात् प्रकृतिवैशिष्टयादतिरिक्तं देशोऽय मस्ति अशोक विक्रमादित्य हर्षवर्धनसदृशानां राज्ञां जन्मभूमिः, अत्रैव महात्मगान्धिसदृशा नेतारो, विष्णुगुप्तसदृशाः नीतिविदः, अपालागार्गीमैत्रेयीसदृशा ब्रह्मवादिन्यो देव्यः, व्यासवाल्मीकिशंकराचार्यसदृशाः ब्रह्मवेत्तारः, भीष्मपितामहसदृशा ब्रह्मचारिणः, कालिदासभारविमाघप्रभृतयः काव्यकर्तारः, तिलकगोखलेप्रभृतयो देशनेतारः, लब्धकीर्तयो वैज्ञानिकाः, अखिलविद्यापारङ्गता विद्वांसः धार्मिकाः सदाचारिणश्च जाताः।

धर्मसंस्कृतिदृष्टयापि प्रख्यातमेव देशस्यास्य सुनिर्मलं यशः सर्वत्रैव पृथिवीतले। देशस्यास्यैव संस्कृतिः प्राचीनतमा। एतद्देशप्रसूता एव विद्वांसः, शिक्षाविदः, धार्मिका एव तत्र तत्र ज्ञानोपदेशेन प्रसृतं, अज्ञानान्धकारं दूरमकुर्वन्। कियन्तो विदेशीया अत्रत्यविश्वविद्यालयेभ्यः शिक्षां गृहीत्वा स्वस्वदेशेषु विद्याकलाप्रचारं विधाय स्वकीयान् देशानुन्नतिपथं निन्युः। अत एवाह मनुः—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

एतेन स्पष्टमेव देशस्यास्य सर्वोत्कृष्टं महत्त्वमिति।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

१६

सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते

इह निरन्तरं परिवर्तनशीले जगतीतले कदाचित्सुखमायाति कदाचिच्च दुःखम् । अत एवोच्यते 'चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च' । मानसः परितोषो हृदयाह्लादो वा जनानां सुखाभिधानेनाख्यायते, हृदयावसादः चेतसोऽपरितोषो वा दुःखमित्युच्यते । यतते च जनोऽहर्निशं मानसिकपरितोषलाभायैव न तु हृदयावसादकराय दुःखाय । परं नैतल्लभ्यते सर्वत्रैव सर्वथैव सर्वैरेव । यत्र कुत्राप्यभिलक्ष्यते सुखं तत्रापि न सर्वतोभावेन वास्तविकं सुखं, यतो हि सुखस्य दुःखस्य वा स्थितिः मनसा निर्धार्य्यते नतु वाह्यदृशा । सन्तु नाम नैके सुखिनः, कथ्यन्ताम् नामैते सुखिनोऽन्यैरपि तद्दर्शिभिः तदर्थिभि र्वा, परं नैतेऽपि तावत्सुखिनो भवितुमर्हन्ति, यावत्ते स्वयमेवात्मानं सुखिनं नाभिमन्यन्ते । सुखानुभूतिः भवति मानसी, नहीयं वाह्यदृशावगम्यते सर्वत्रैव ।

वस्तुतः तदेव वास्तविकं सुखं यदनुभूयते दुःखानुभवादुत्तरम् । येन न कदापि सौभाग्याद् दुःखं शारीरिकं मानसिकं वानुभूतं, नहि स सुखस्यापि अनुभूतिं तत्त्वतः कर्तुं प्रभवति, प्रभवति तु स एव तत्त्वतः सुखमधिगन्तुं सुखमनुभवितुम् अन्यानपि सुखिनो विधातुं, यः प्रथमं घोरं दुःखमन्वभूत् । दुःखादुत्तर एव सुखोपनिपातः स्वदते इत्यस्ति सर्वेषामेव प्राणिनामनुभूतिः । अनुभूतदुःखो हि जनो यदा दैवात् स्वपुरुषार्थाद् वा सुखमधिगच्छति, नैकविधशारीरिकक्लेशजर्जरीकृतो यदा स्वास्थ्य मारोग्यं वा लभते, धनपुत्राद्यभावजनितमानसावसादसम्पीडितो यदा सर्वविधैहिकक्लेशापहारीणि धनानि ऐहिकामुष्मिकसुखसाधनीभूतं पुत्रादिकञ्चा वाप्नोति, दैवदुर्विपाकाद् वन्धनगतो वा निर्मुच्यते च तदैव स परमं निरवधि अनल्पं वास्तविकं सुखमनुभवति, एवञ्च स तदोत्प्रेक्षते, अहो, समुदितं मे भाग्यम्, सफलीभूतानि मे पुराकृतानि पुण्यानि, सुसिद्धान्यधुना गुरुजनानामाशीर्वचनानि, सफलं मे जीवितम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नात्र सन्देहः यत्तेनैवोपलभ्यते सुखस्यास्य यथार्थं स्वरूपं मात्रा च, तेनैव चानुभूयते दौर्लभ्यमप्यस्य, येन पूर्वं दुःखमधिगतं भवेत्। यो हि दैवाद् ऋद्धिमदन्वयसंभूतः, सर्वविभूतिविभूषितः, अनन्यसाधारणान्नाद्याहारपेयलेह्यादिसामग्रीसमेधितः, सर्वाभ्यर्चितः, गर्भेश्वरत्वमापन्नः, बहुमूल्यवता नल्पेनातिशोभाकारिपरिच्छदेनालंकृतः, मूल्यवच्छयनीयमधिशयितः, आजन्मनः सर्वसुखसाधनसम्पन्नो भवति, न स सुखस्यानन्ददायिनीं परमामनुभूतिमधिगन्तुं पारयति। रुक्षनतोन्नतभूमिशय्य एव विजानाति पर्यङ्कशयनसुखम्, दारिद्र्यदुर्गत एव विजानाति वह्वर्थानामनल्पं सुखम्, विरलाशनः क्षुत्क्षामकण्ठो वा एवावगच्छति शाल्योदनस्वादम्, ग्रीष्मातपसन्तप्त एवानुभवति सुशीतलजलस्नानसुखम्, दुःखोदधिनिमग्न एव चानुभवति परमं सुखं नान्यः।

अयमस्त्यपरोऽपि पूर्वदुःखानुभवस्य गुणः। नहि विभूतिमन्त आजन्मनः सुखानुभवकर्तारोऽवगच्छन्ति परवेदनाम्, नहि ते क्लेशदशामापन्नं जनमुपगच्छन्ति साहाय्यदानाय; नहि ते विद्यावयोवृद्धेषु पूज्येषु जनेषु विनयेन व्यवहरन्ते, नापि च वन्दनीयान् नमस्कुर्वन्ति, नाप्येते दीनेषु व्याधिग्रस्तेषु अन्यायेनाधरीकृतेषु सदया जायन्ते। नापि द्रवति परपीडामालक्ष्याप्येतेषां हृदयम्। अतः सत्यमेवैतत्, यत्सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते, घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम्।

१७

अतिथिसत्कारः

अद्यतनीये स्वार्थसाधनपरेऽपि जगति अतिथिसत्कारस्य महत्त्वं सर्वैरेव स्वीक्रियते। अन्यदेतत्, यन्न कुर्वन्ति सर्व एव अतिथीनां सत्कारम्।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भारतीयसंस्कृत्यनुसारिधर्मग्रन्थेषु अतिथिसत्कारस्य महत्त्वं भूयो भूयो वर्णित मुपलभ्यते । गृहस्थाश्रमे करणीयेषु धार्मिककृत्येषु अतिथिसत्कारो विशिष्टं स्थानं भजते । नहि सत्कारोऽयं नैमित्तिको विधिः अपि तु सत्कारस्यास्य नित्यविधिषु नित्यकरणीयेषु कार्येषु वा गणना । नहि गृहस्थेनाचरणीयानि नित्यकृत्यानि तावत् पूर्णानि भवन्ति, यावत्-अतिथिसत्कारो न विधीयते । सामान्यतः गृहागतानां महनीयानामेव सज्जनानां न केवलम् अपितु क्षुद्राणामपराधिनामपि शत्रूणामपि सत्करणं परमं कर्तव्यं निर्दिष्टम् धर्मशास्त्रकृद्भिः । परमतिथीनां पर्युपासनन्तु अनिवार्यमेव गृहस्थानां कृते । स्मृतिकारैरुपदिष्टं यदतिथीनां पादोदकं गृहाणि पुनन्ति अतः तेष्वागतेषु आसनभोजनजलदानादिना तेषां सपर्या विधेया, यदि कदाचित् कोऽपि अतिथिः असन्तुष्टोऽनाद्दतो वा निवर्तते गृहस्थाश्रमिणां गृहात् तदा स तत्पुण्यमादाय गच्छति ।

पुरा वनाश्रमेषु अतिथीनां सत्काराय सुप्रबन्ध आसीत् । आश्रमिणो मनसा वाचा कर्मणा अतिथिसत्कारपरा आसन् । 'न कोऽपि अतिथिर्विमुखो गच्छेत्' एतदर्थम् आश्रमिणः सदैव सावधाना अवर्तन्त । कण्वाश्रमवासिनी शकुन्तला, या महर्षिणा कण्वेन अतिथिसत्काराय नियुक्ता आसीत्, यदा अन्यमनस्का न श्रुतवती दुर्वाससः अतिथिसत्काराय समाह्वानं तदा स सुलभकोपः महर्षिः तां शप्तवान्, फलतः सा दुष्यन्तेन परित्यक्ता ।

स्मृतिकारै र्यत्र गृहस्थाश्रमिणां कृते नित्यकर्मसु पञ्चयज्ञविधानं विहितं तत्रातिथिसत्कारोऽयं प्रमुखं स्थान माधत्ते । यो गृहस्थोऽतिथिसत्कारं विना, अतिथिभ्योऽदत्त्वैवान्नादिकं स्वयमेवोपभुङ्क्ते स स्तेन एवाभिमतः । अतिथयो न सन्ति भिक्षवः, यद्यप्येतेऽनाहूता अतर्किता एवागच्छन्ति । अतएव ते देववत् पूज्याः, यावच्छक्यं भोजनाच्छादनदानादिना सत्करणीया एव । एतेषां पूज्यानामतिथीनामाशीर्वचसा गृहस्थानां पापक्षयो भवति, पुण्यञ्च वर्धते ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अतिथिसत्कारविधिरयं वेदकालादारभ्य अद्यावधि प्रचलितो विद्यते । विविधेष्वपि सम्प्रदायेषु विविधास्वपि जातिषु च अतिथिसत्क्रिया अभिमता । अतिथिसत्कारस्यास्मादेव वैशिष्ट्यात् 'अतिथिदेवो भव' अर्थात् देववदतिथिपूजापरो भव" इत्युच्यते । एतेन स्पष्टम्-अतिथिसत्कारस्य महत्त्वम्, अतोऽस्माभिरतिथिसत्कारो विधेयः ।

१८

अनुशासनम्

अनेकविधपारस्परिकविरोधभावनाभरिते विश्वस्मिन्नस्मिन् अनुशासनमेवास्ति एतादृशो गुणः यो विरोधिभावानां कलहप्रवृत्तिमपनीय लोकान् पारस्परिकश्रद्धाभावनासूत्रे आवध्नाति, परस्परसहयोगेन कार्यविधिं सञ्चालयति, लोकानेकत्र समाहृत्य स्वस्वकार्यसाधनाय प्रेरयति च । अनुशासनमुपेक्ष्य यदि सर्वे एव यदृच्छया कार्यं कुर्युः, न ते कार्यसाफल्यमधिगच्छेयुः । यद्यप्यस्ति अनुशासनानुगुणकार्यविधानं कठिनं तथापि अनुशासनमन्तरेण न किमपि कार्यं सेत्स्यति । एतदेवास्ति कारणं यदनुशासनमेतादृशं महत्त्वमाधत्ते, अनेकविधकार्यसाधनव्यस्तै र्लोकैरनुशासनमपेक्ष्यते ।

सर्वप्रथमं बालकैः पितृभ्यामेवानुशासनशिक्षा प्राप्यते, पितरो हि प्रथमं स्वपुत्रान् अनुशासनं शिक्षयन्ति । यथाकालं तानेतस्य महत्त्वं बोधयन्ति, अभिलषन्ति च यत्तेषां बालका बालिकाश्चानुशासने वर्तेरन्, येन गार्हस्थ्यकर्मसु, सामाजिकव्यवहारेषु, विद्याधनाद्यर्जनसाधनीभूतेषु विविधेषु अन्येष्वपि कार्येषु न कापि बाधा निपतेत् ।

गृहाद् वहिरागत्य यदैते बालका बालिकाश्च विद्याध्ययनाय विद्यालयेषु प्रवेशं लभन्ते तदा त्वनुशासनस्य शिक्षणं, तन्महत्त्वं, तदुपयोगित्वं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वा एतै रवाप्यते गुरुजनेभ्यः । गुरवश्चात्र तान् शिक्षयन्ति "अनुशासने वर्तस्व, गुरुजनानुशासानुकूलमेव कार्यं कुरुष्व, स्वाध्यायान्मा प्रमदः, सह-पाठिभिः सह स्नेहेन प्रेम्णा च वर्तस्व, यथाकालं यथोचितं यथाशक्ति, स्वकीयेन सर्वसन्तोषावहेन, व्यवहारेण श्रद्धेयानाचार्यान् सेवस्व च । विद्यालयेषु समुपलभ्यमानानि नैकविधानि क्रीडाक्षेत्राण्यपि छात्रेषु अनुशासनभावनासम्वर्धनायैव भवन्ति । अतो नात्र सन्देहः, यद् विद्या-लयेषु छात्रेभ्यः सर्वविधानुशासनशिक्षा दीयते, अन्यतोऽपि लोकव्यव-हारादप्येतल्लभ्यते ।

परं सत्यपि एतादृशे सुविस्तृते अनुशासनशिक्षाक्षेत्रेऽपि छात्राणा-मनुशासनहीनता अद्यत्वे प्रमुखसमस्या वर्तते । देशस्य हितैषिणो मनीषिणोऽवस्थामिमामनुशासनस्य विचिन्त्य न केवलं भाविनागरिकेषु अपि तु कर्णधारेष्वपि अद्यतनीयेषु छात्रेषु उत्तरोत्तरं वर्धमाना मेता मनुशासनहीनतारूपां दुष्प्रवृत्तिं दूरीकर्तुं प्रयतन्ते । छात्राणां चरित्र-निर्माणसाधनीभूतानि सर्वाण्येव प्रायः क्षेत्राणि स्वच्छानि सर्वविध-साधनोपजुष्टानि आकर्षकाणि विधातुं प्रयत्नपराः संलक्ष्यन्ते । संर-क्षका अभिभावका अपि छात्राणां सन्त्येतदर्थं जागरुकाः सतर्काश्च । परं दुष्प्रवृत्तिरियन्नाद्याप्यपयाति, किमस्ति कारणमेतस्येति विचारे 'मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना' इत्युक्तिदिशा नैकविधा विचाराः श्रूयन्ते परं नास्त्यत्र मतद्वयं यदाधुनिकशिक्षाप्रणाली एव प्रथमं कारणमेतस्य, सम-यानुसारमियमामूलतः परिवर्तनमपेक्षते । न केवलं छात्रा अध्यापका अपि अस्मिन् बहुव्यये युगेऽनयासन्तुष्टाः, नास्त्यत्र छात्राणां कृते अध्ययनोत्तरकालमर्थसाधनव्यवस्था, नापि अध्यापकानां कृते काला-नुरूपं वेतनव्यवस्था चेति । अतः सर्वकारस्येदं प्रमुखं कर्त्तव्यं यदेतद् दूरीकर्तुं प्रयतेत ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

566 BVBSSMV

१९

विश्वशान्तिः

विविधवादविवादायत्ते लोकेऽस्मिन् सर्वं एव प्राणिनो विश्वशान्ते-रभिलाषिणो दृश्यन्ते, न कोऽपि स्वजीवनेऽशान्ति मभिवाञ्छति। पर मद्यत्वे परस्परविद्वेषानलदह्यमाने, परराज्यधनाद्यपहारपरायणे, निरपराधिजीवहिंसाकर्मनिरते, सर्वत्रैवाविश्वासाश्रद्धाप्रधाने, परनि-न्दापरघातकुशले, परवञ्चनापरातिसन्धानपरेऽद्यतनीये जगति न कुत्रापि शान्तिरालक्ष्यते। न केवल मेकस्मिन् परिवारे समाजे राष्ट्रे वा अपि तु सर्वत्रैव देशे विदेशे चाशान्तेरेव साम्राज्यं दृग्गोचरतामुप-याति। यत्र कुत्रापि कदाचिच्छान्तिरपि श्रुतिपथमुपैति सापि क्षण-मात्रावस्थायिनी न च सार्वकालिकी। सत्स्वपि उपरिनिर्दिष्टेषु कति-पयेषु अशान्तिकारणेषु अन्यानि अद्यत्वे प्रचलितानि कारणान्यपीमाम-शान्ति रात्रिन्दिवं वर्धयन्ति। अद्यत्वेऽपि सर्वतः पश्यन्तोऽपि जनसंहारं कियन्तो देशाः घातकास्त्रशस्त्रनिर्माणपरा एव श्रूयन्ते, नाद्यापि ते विरमन्ति सर्वजनसंहारकारिणोऽस्माद् व्यवसायात्, राज्यान्तराणां वलादास्कन्दनात्, तत्रत्यविभूतिलुण्ठनात्, स्वप्रभावस्थापनाच्च। इदमप्यस्ति अन्यत् कारणं विश्वस्याशान्तेः। एवमेव युद्धमप्यस्ति एतस्याः कारणम् "दारुणा हि महाहवा भवन्ति" इत्यवगच्छन्तोऽपि लोकव्यसननिरपेक्षाः स्वार्थसाधनपरा नेतृत्वाभिलाषिण ऐश्वर्यगृद्धाः परसम्पत्तिलोलुपा मोहाज्ञानावृतचेतसः आत्मप्रभावाभिकामाः केचन सर्वनाशकारिणे युद्धाय कटिवद्धा वर्तन्ते। नहि महाहवाः केवलं नीर्ति, सदाचरणं, जीविकासाधनं, धनं, वलं, सैन्यं विद्याः, कला एव अपि तु चिरसंचितां संस्कृतिं सभ्यताञ्च विनाशयन्ति। यद्येतेषु संग्रामेषु वैज्ञानिकानुसन्धानाविष्कृतानां सर्वविघातकानां शस्त्रास्त्राणां प्रयोगः क्रियेत चेत्तर्हि सद्य एव सर्वनाशः समुत्पद्येत। युद्धफलं कीदृग् भयावहं भवतीति सर्वेषामेव विदितम्। सन्तीमानि अन्यान्यपि कारणानि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विश्वस्याशान्तेः तद्दूरीकरणाय विश्वशान्तिस्थापनाय च चिन्तनीयाः सदुपायाः ।

यद्यपि प्रथममहासंग्रामस्यान्ते शान्तिप्रियैः, धीमद्भिः, राष्ट्र-संधेति नाम्ना एकः सङ्घो निरमायि, परं युद्धवारणाय दण्डशक्ति-विहीनत्वादयं सङ्घो निष्फलप्रयत्न एवाभवत् । एवमेव द्वितीयमहा-संग्रामस्यान्तेऽपि आणविकास्त्रप्रयोगेन संजातं महान्तं लोकविनाशं प्रत्यक्षीकुर्वद्भिः कैश्चन शान्तिस्थापनाभिकामै र्जनैः 'मित्रराज्य-समिति नाम्ना अपरोऽपि सङ्घो निर्मितः परमयमपि सर्वथा युद्ध-निराकरणाय न प्राभवत्, एवमेव अन्येऽपि नैके उपाया एतदर्थं विहिताः, परं युद्धस्थितिः तत्साधनीभूता आणविकास्त्रनिर्मिति र्वा नाद्यापि प्रतिहता, अस्या गति र्नावरुद्धा, युद्धविभीषिकापि चाद्यापि यथा-वस्थिता लक्ष्यते ।

वस्तुतः शान्तिपथावरोधकौ द्वावेव दोषौ-कामः, क्रोधश्चेति वर्तेते । महावलशालिनौ विनाशहेतू द्वावपीमौ दोषौ विश्वशान्तिप्रियैः सर्वैः सर्वदेशवासिभिः सर्वप्रथमं प्रहातव्यौ, परद्रव्यैषणा अपि विवर्जनीया, परस्परं साम्यभावः स्थापनीयः, लोभमोहमदमात्सर्यादयो दुर्गुणाः परित्याज्याः, वसुधैव कुटुम्वकमितिभाव आश्रयणीयः ।

सर्वे कुशलिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ।।

इत्युक्तिदिशा स्माभि र्गन्तव्यमित्येवास्ति विश्वशान्तेः प्रमुखं साध-नमिति ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२०

राष्ट्रभाषा

विविधभाषाभाषिजनसंकुले देशेऽस्मिन् का भाषा राष्ट्रभाषा भवितुमर्हति—प्रश्नोऽयं स्वाभाविकः सर्वेषां मनसि समुदेति। प्रवृत्तिरियं सर्वेषामेवास्माकं यत्सर्व एव स्वकीयामेव मातृभाषां राष्ट्रभाषापदमलंकरणाय सक्षमां मन्यन्ते। परं राष्ट्रभाषापदे सैव भाषा प्रतिष्ठिता भवति या सर्वाधिकसंख्याजुषां जनानामेव भाषा भवति, या कापि वा सा भाषा भवेत्।

स्वातन्त्र्यावाप्त्यनन्तरं देशेऽप्यस्माकं राष्ट्रभाषा प्रश्नोऽयमायातः, तदा केचन संस्कृतम्, केचित्-हिन्दीभाषां, केचिद् हिन्दुस्थानीत्याख्यातां भाषां, केचन विदेशीयामेवाङ्गलभाषां राष्ट्रभाषापदेऽभिषेक्तुं यथाशक्ति प्रयत्नमकुर्वन्। केचन प्रान्तीयामेव यां काञ्चिद् भाषामेव राष्ट्रभाषां विधातुं सयत्ना वभूबुः। परं बहुमतानुसारेण हिन्दीभाषा एव केवलं राष्ट्रभाषा स्वीकृता। अथ चाल्पकालं राष्ट्रभाषाविवादोऽयं विश्रान्ति लेभे। परं कालान्तरे कैश्चित्प्रान्तीयैं जनैः राष्ट्रभाषाविवादमिमं पुनरप्येकवार मुत्थाप्य हिन्दीभाषास्थाने आङ्गलभाषास्वीकरणाय प्रयत्नमाचरद्भिः हिन्दीभाषाविरोधः प्रदर्शितः। प्रदर्शनेष्वेषु नैकविधा क्षतिरभवत् कतिपयेषु प्रान्तेषु। अथ च सर्वकारेण नान्यं मार्गं पश्यता सर्वसन्तुष्टिपरेण सता हिन्दीभाषां राष्ट्रभाषां स्वीकुर्वतापि आङ्गलभाषा राष्ट्रभाषायाः हिन्दीभाषायाः सहयोगिनी कृता। फलतोऽद्यापि राष्ट्रभाषा भूत्वापि हिन्दीभाषा नहि सर्वाधिकारमनुप्राप्य संचलति। अद्यापि तथाकथितै विद्वद्भिः हिन्दीभाषाविद्भिरपि आङ्गलभाषा प्रयुज्यमाना श्रूयते। शासनाधिकारिणस्तु प्रायः जनसाधारणसभासु, सामाजिकोत्सवेषु, स्वकीयोद्घाटनावसरेषु, अशिक्षितजनसमुदायेषु च आङ्गलभाषायामेव भाषणं कुर्वन्तः साधारण-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वार्तालापमपि कुर्वन्तश्च आत्मानं गौरवान्वितं मन्यन्ते। एत एव गौरवेण कथयन्ति यन्नास्तीदानीमपि हिन्दीभाषा सर्वविधभावाभिव्यक्तिक्षमा अतो नेयं व्यवहरणीया सर्वत्रैव, पामराणामेव अशिक्षितानामेवेयं भाषा। अथ च आङ्गलभाषामन्तरेण न स्थास्यति भारतैक्यम्, अत ऐक्यसंरक्षणायापीयं विदेशीया भाषा संरक्ष्या प्रयोक्तव्या चेति। परमाङ्गलभाषाप्रयोगविषये समुपस्थापिता एते तर्काः सन्ति कुतर्का एव, नास्त्यत्र किमपि तथ्यम्।

राष्ट्रभाषा तु बहुजनभाषा हिन्दीभाषैव भवितुमर्हति नान्या काचिदपि विदेशीया प्रान्तीया वा भाषेति।

२१

भारतीया संस्कृतिः

संस्कृतिशब्देन वस्तुतः आध्यात्मिको विचारः, धार्मिकी प्रवृत्तिः, दार्शनिकं ज्ञानं, उत्तमोत्तमा आदर्शाः, सत्साहित्यम्, चमत्कारिविज्ञानम्, विशिष्टाः कलाः, शौचाचारादयः मानवजीवनोपयोगिनो विशिष्टाः सद्भावा गृह्यन्ते। अद्यत्वे संस्कृतिशब्दोऽयं नहि स्वकीये प्राचीनेऽर्थे प्रयुज्यते, अपि तु शब्दोऽयं, आङ्गलभाषायाः 'कल्चर' शब्दप्रभावेण अन्यार्थमपि लक्षयति। वस्तुतः सभ्यताया यदाभ्यन्तरं स्वरूपं तदेवाभिधीयतेऽद्यत्वे संस्कृतिशब्देनानेन।

सर्वास्वन्यासु संस्कृतिषु भारतीया संस्कृतिरेव प्राचीनतमा श्रेष्ठा चास्ति। यदापरे देशा, येऽधुना स्वकीयामेव संस्कृतिं सर्वाधिकां समुन्नतां मन्यन्ते, असभ्या असंस्कृता चासन्, तदा भारतीया संस्कृतिरेवेयमन्येषां देशानामादर्शभूमिः पथप्रदर्शिका वाभवत्, यथा निर्दिशति भगवान् मनु :—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः ।।

इत्युक्तिदिशा भारतीयविश्वविद्यालयेभ्य एव पुरा विद्यामधीत्य कलाज्ञानञ्चाधिगम्य अन्यदेशीया इदानीं स्वस्वदेशस्य सभ्यतासंस्कृति-गौरवाभिमानिनो दृश्यन्ते ।

आर्यसंस्कृतिमूलापि भारतीया संस्कृतिरधुना विविधाभि रन्य-देशीयविचारधाराभि रनुप्राणिता प्रभाविता वास्ति । प्राचीनकाला-देव यवनहूणाङ्ग्लादिजातयः काले काले भारतभुवमाक्रम्य अस्यो-दारायाः संस्कृतेः निर्विरोधिधर्मस्य च विनाशाय विकृतस्य स्वकीयस्य धर्मस्य संस्कृतेः सभ्यतायाश्च प्रचाराय सयत्ना वभूबुः । फलतः अद्य-तनीया भारतीया संस्कृतिः स्वकीयं प्राचीनतमं परिशुद्ध स्वरूप मपहाय विकृता अन्यसमन्वयमूला सती भारतीयसंस्कृतिरित्याख्यां भजते ।

एवम्भूताया अपि भारतीयसंस्कृतेरद्यापि यद् वैशिष्टच न त-ल्लभ्य मन्यासु विविधासु वाह्याडम्बरप्रदर्शिकासु असहनशीलासु अनुदारासु अन्यदेशीयसंस्कृतिषु । विचारस्वातन्त्र्यम्, समन्वयात्मिकी भावना, सहिष्णुता, उदारता, धर्मप्राणता, कर्मयोगः, पुनर्जन्मविश्वासः, मुक्तिसाधना, आत्मज्ञानम्, सदाचारः, दर्शनम्, धर्मसाधना, सद्गुणा-श्रयत्वम्, पापानाचारपराङ्मुखता, समदर्शितादयो नैके गुणा भार-तीयसंस्कृतौ विद्यमानाः सन्ति । एभिरेव अन्यत्रसुदुर्लभै र्गुणै र्भारतीय-संस्कृतिरन्यदेशीयसंस्कृतीरधरीकरोति ।

सद्भावानां सद्गुणानाञ्च प्रभावादेवास्या भारतीयसंस्कृतेरद्यापि चीनमिश्रादयः संस्कृतिदृष्टचा प्राचीना महान्तो देशा अस्याः सर्वो-त्कृष्टं महत्त्वं स्वीकुर्वन्ति, किमुत वक्तव्यम्, अर्वाचीनानां मिथ्यागर्व-निर्भराणां परराष्ट्रलोलुपानां सद्यो लब्धैश्वर्याणां देशानां विषये ।

भारतीया हीयं संस्कृतिः विश्वजनीना संस्कृति र्नात्र सन्देहावसरः । अभ्युदयनिःश्रेयससंसिद्धिसाधकाः, कर्मवादात्मैकत्वादयोऽस्या अन्ये-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ऽपि विशिष्टा गुणाः सन्ति । एभिरेव गुणै भारतीयसंस्कृतिरेव केवल मधुनापि, भेदविभेदनीतिभीते, वादविवादसंघर्षधर्षिते, राजनीतिवाराङ्गनाभि रूपमर्दिते, सर्वतो युद्धविभीषिकाभिः संत्रस्ते, अशान्त्या वैरानलेन च दह्यमाने विश्वस्मिन्नस्मिन् पारस्परिकमनोमालिन्य सपहाय मानवेषु समतां सद्भावं सौख्यं च संस्थाप्य विश्वकल्याणं विधातुं क्षमते, नान्या संस्कृतिरिति ।

२२

अखण्डं भारतं राष्ट्रम्

राष्ट्रमिदमस्मदीयं भारतमखण्डमेव । यद्यपि केचन वैदेशिका अखण्डमपीदं राष्ट्रं खण्डं कर्तुं समीहन्ते तथापीदमद्यत्वेऽपि दृश्यतेऽखण्डमेव, यतो हीदमखण्डमेव निर्मितं विधात्रा ।

जन्मभूरियं केवलं हिन्दूनामेव, यद्यपि चिरकालादेवात्र राष्ट्रस्यास्य 'वसुधैव कुटुम्बकमिति भावनया केचन वैदेशिका अपि स्ववसतिमकुर्वन् । चिरकालमत्राध्युष्य व्यापारसेवावृत्त्यादिविविधकार्याणि कुर्वन्तः सम्पत्तिमन्तो बलवन्तश्च भूत्वा अधिकारपदमलंकुर्वाणा अद्यत्वे त एव वैदेशिका भारतस्यास्य अखण्डस्यापि राष्ट्रस्य खण्डं चिकीर्षन्ति । एतदर्थं सर्वप्रथमं मौहम्मदा एव प्रयतन्ते । देशस्यास्य स्वातन्त्र्यावाप्तेरनन्तरमेवैभिः मौहम्मदैः, यतो ह्यत्र बहुसंख्यका हिन्दवोऽल्पसंख्यकेषु मौहम्मदेषु अत्याचरन्ति, अतो भारतस्य विभागद्वयं विधेयम—एको 'हिन्दुस्थानेत्याख्यो विभागः, अपरश्च पाकिस्तानेत्याख्यो विभागः; पाकिस्तानेत्याख्ये विभागे मौहम्मदानां, हिन्दुस्थानेत्याख्ये चापरस्मिन् विभागे हिन्दूनामेव केवलमधिकारो भवेदिति,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सर्वथैवाचिन्त्योऽसम्भाव्यो विवादो वैदेशिकैस्स्वार्थान्धै र्मदान्धैरुत्थापितः, फलतः परतुष्टिपरेण सर्वसन्तुष्टिमात्रजीवितेन भारतस्याखण्डत्वमहत्त्वमजानता सर्वकारेणापि चिरस्थायिस्वातन्त्र्यमोहाद्वा, पाश्चात्यदेशातङ्काद्वा, आङ्गलदेशवासिनिदेशाद्वा, प्रचलितविवादपरिहाराद्वा हेतोः विभक्तराष्ट्रद्वयसिद्धान्तः स्वीकृतः। वैदेशिकैः ऐशवैश्चायं महता हर्षेणानुमोदितः। परं सत्यपि तथाकथिते अनुभूयमानेऽपि विभागे न स वैदेशिकैरन्यायेनोत्त्थापितो विवादो विश्रान्ति लेभे। वस्तुतस्तु प्रकृतिदृष्टया, संस्कृतिदृशा, आचारपद्धतिदृशा चाखण्डस्यास्य भारतराष्ट्रस्य विभागद्वयस्वीकरणमेवासीदामूलतो न विचारसहम् अपि तु बुद्धिभ्रमजन्यमेव; यतो हि यदर्थमेतदसम्भाव्यं कर्म विहितं तदपि निष्फलमेवा भवत्।

वस्तुतस्तु येषामस्त्ययमभिसन्धिः-यद् भारतम्, आङ्गलानां मौहम्मदाना मन्येषामपि तेषां, ये व्यापारधिया स्वधर्मप्रचारधिया द्रव्यलुण्ठनधिया वात्रागत्य चिरकालं निवासं जगृहुः, अस्तीदं राष्ट्रम्, ते न कदापि सूक्ष्मेक्षिकया पश्यन्ति देशस्यास्याखण्डताप्रतिपादकानि प्राकृतिकदृश्यानि, यानि विधात्रा स्वयमेव देशस्यास्याखण्डराष्ट्ररूपंमनसि निधायैव प्रणीतानि संरक्षितानि चापि। उत्तरतो नगाधिराजहिमालयद्वारा अपरदिग्त्रयतश्च समुद्रद्वारा देशोऽयमावद्धः। गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु, कावेरी त्याख्याता स्वास्थ्यकरं पवित्रतमं जलमावहन्त्यो नद्यो, अयोध्यामथुरामायाकाशीकाञ्च्यवन्तिकाद्वारकेत्याख्याः सप्तपुर्यश्च यद्यपि सन्ति सर्वभारते व्याप्ताः, तथापि कस्मिँश्चिदेकस्मिन्नेव भारतप्रान्ते वास्तव्यो धार्मिको जनः स्वकीयेषु नित्यनैमित्तिकधार्मिककृत्येषु सर्वासामेवासामावाहनं विधायात्मानं धन्यं मन्यते। भारतस्य कस्मिन्नप्येकस्मिन् प्रान्ते कोऽपि गच्छेत् तत्र सर्वत्रैव एकभावेनैव स सीतारामभक्तिपरान् हिन्दुजनानवश्यं द्रक्ष्यति। एवमेव श्रीमद्भगवद्गीता न केवल मेकप्रान्तनिवासिनां हिन्दुजनानामेव धर्मपुस्तकम्, अपि तु आहिमालयादासिन्धु निवासिना मस्ति धर्मपुस्तकम्, एवं भगवान् शिवोऽप्यस्माकं सर्वेषामेवाराध्यः।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एवमेव भारतवर्षनिवासिनां सर्वहिन्दुजनानामाकृतयः संस्कृतिः संस्काराः धर्मग्रन्थाः प्रथाः कलाश्च समाना एव सन्ति। एतानि सर्वाणि भारतस्याखण्डत्वमेव परिचाययन्ति, अतो नात्र विवादावसरः– अखण्डं भारतं राष्ट्रमिति।

२३

विद्या सर्वत्र पूज्यते

जगतीतलेऽस्मिन् जगन्नियन्त्रा जगदीश्वरेण समुत्पादितेषु सर्वेषु पदार्थेषु विद्यैव सर्वोत्तमा गण्यते। मानवानां कृते विद्याया आवश्यकत्वं को न स्वीकुर्यात्। विद्याविहीनः साहित्यसंगीताभ्याञ्च विरहितः पुरुषः न केवलं ग्रामीणः असभ्यः असंस्कृतः मूर्ख एव अपितु भर्तृहरि-वचनानुसारं स पशुरेवास्ति, न मानवसंज्ञाभाक्। ज्ञानेन बिना यथा पशुरात्मीयपरकीययो भेदं कर्तुं न प्रभवति तथैव विद्याविहीनो नरः स्वकर्तव्याकर्तव्यो र्विवेकं कर्तुं न पारयति। पशोः मूर्खस्य च जीवन-पद्धतिरप्येकरुपैव भवति, यथा पशव आहारनिद्राभयमैथुनादिभिरेव सर्वं जीवनं गमयन्ति, मूर्खो विद्याविहीनोऽप्येतैरेव कृत्यैः सुदुर्लभं मानव-जीवनं क्षपयति। एतेन स्पष्टं यद् विद्यैव केवलं पशुमानवयोःधर्मा-धर्मयोः कर्तव्याकर्तव्यो र्वा भेदबुद्धि जनयति। अतो नेयमत्युक्तिः यद् विद्याविरहितस्य मूर्खस्य जीवनं व्यर्थमेव। नाद्रियतेऽसौ विद्यावद्भि-र्विचारशीलै र्नरैः। उपहास्यतामायात्यसौ सर्वेषामेव जनानामनादर-पात्रञ्च भवति। यथोच्यते—

शुनः पुच्छमिव व्यर्थं जीवनं विद्यया बिना

एतदेवाभिलक्ष्य "विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्" इत्युक्तं विद्वद्भिः। अन्यत् साधारणं धनन्तु व्ययात् क्षयमेति परं विद्याधनं व्यये कृतेऽपि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वर्धत एव, सञ्चयात्तु क्षयं याति । 'विद्वान् सर्वत्र पूज्यते' इति यदुच्यते तदवितथं वचः । विद्यामधीत्यैव विद्वान् भवति, पूज्यते समादरञ्च लभते विद्वानेव । विद्याधनेन जनः सर्वमेव वशीकर्तुं पारयति । विद्यारूपं धनं सदा अक्षय्यं भवति, नेदं चौर्यहार्यमपि जायते । चौर्यकर्मणि कुशला जनाः साधारणं धनन्तु लीलयैवापहर्तुं शक्नुवन्ति, परं न तेऽपि महता कौशलेनापि विद्याधनं चोरयितुं पारयन्ति । नेदं विद्याधनं राजदण्डेनाप्यपहार्यम्, न चाप्येदं भ्रातृभाज्य मपि भवति । विद्या नाम बुद्धिस्था भवति अतो नेयं राजचौरभ्रात्रादिभिरपहरणीया भवति । अथापि नेयं कदापि भारकारिणी अपि भवति, यत्र कुत्रापि वा विद्वान् गच्छेत् तेनाधीता विद्यापि अनायासेनैव तेनैव सह यास्यति, न केवलं यास्यत्येव अपि तु बन्धुसमा विदुषः साहाय्यमपि करिष्यति । विदेशे निर्जने वने वा विद्यावान् यत्र कुत्रापि वा गच्छेत्, विद्यावलेन तत्र तस्य सर्वमभीष्टं कार्यमनायासेनैव सेत्स्यति । विदेशे अपरिचितप्रदेशे न मानवाकृतिः पूज्यते, न धनं, न वलं वा पूज्यते, पूज्यते तु केवलं विद्यैव सर्वत्र । एतद्रूपं विद्यावैशिष्टचमभिलक्ष्य सुमतिना केनाप्यभिहितम्—

वसुमतीपतिना न सरस्वती बलवता रिपुणापि न नीयते ।
समविभागहरै र्न विभज्यते बिबुधबोधवुधैरपि सेव्यते ॥

वस्तुतो या न हर्तुं र्गोचरतामुपैति, या च सततं दत्ता सती विस्तृता सम्यक् स्मृता च भवति, एवं या च न कदापि कल्पान्तेऽपि क्षयमुपयाति, एवम्भूतया विद्यया समं नास्ति किञ्चिदप्यन्यत् ।

यद्यपि लोकेऽद्यत्वे धनवतां यावान् समादरो दृश्यते न तावान् विद्यावतां तथापि समादरोऽय मैश्वर्यशालिनां राज्ञां धनवताञ्च स्वदेश एव स्वपरिचितप्रदेश एव, न विदेशे अपरिचतप्रदेशे वा, परं विद्यावतां पूजा तु सर्वत्रैव भवति । अथापि धनन्तु केवलं धनार्थिभिरेव पूज्यते परं विद्या तु सर्वैरेव पूज्यते । अतः सत्यमिदमुच्यते—विद्या सर्वत्र पूज्यते ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२४

नारी शिक्षा

शिक्षाया महत्त्वन्तु सर्वषामेव विदितम् । शिक्षामन्तरेण न केषामपि सत्कार्यप्रवृत्तिः सम्भवति । शिक्षयैव जनः कर्तव्याकर्तव्यो र्विवेकं कर्तुमर्हति । शिक्षां विना जनोऽन्धवत् प्रवर्तते कार्येषु, प्रस्खलति निपतति च । शिक्षाविहीनो मूर्खः नाद्रियते लोकैः, न स क्षमते धनार्जनाय कुटुम्बभरणाय स्वोदरदरीपूर्त्तये वा । एतदस्ति यदा मानवस्य कृते शिक्षाया महत्त्वम्, तदा शिक्षेयं कथं न नारीणामपि कृते सर्वसाधनोपयोगितां यास्यति, अवश्यमेव यथा शिक्षा मानवमुपकरोति तथैव स्त्रियमपि । शिक्षिताः स्त्रियोऽपि तानि सर्वाण्येव कार्याणि विधातुं पारयन्ति यानि पुरुषाः साधयन्ति । ता अपि सन्ति तथैव बुद्धिमत्यः यथा सन्ति पुरुषा बुद्धिमन्तः । अतो नात्र मतद्वयं सम्भवति यन्नारीशिक्षाया अपि तथैवोपयोगित्वं यथा पुरुषशिक्षायाः । अतो नारीशिक्षाविषयको नात्र कोऽपि विवादः, न च तन्महत्त्वप्रख्यापनस्यावश्यकत्वम् ।

संस्कृतवैदिकसाहित्ये तदुत्तरकालवर्तिनि च साहित्ये न कुत्रापि नारीशिक्षाविरोधः समीक्ष्यते । फलतः प्राचीनयुगे अनेका वेदवेदाङ्गपारङ्गता नार्यो वभूवुः । गार्गीम् अपालाम् मैत्रेयीं वा के न जानन्ति, यासां शिक्षोपलब्धज्ञानगरिम्णा महर्षयोऽपि चकिताः प्रभाविताश्चासन् । इमा देव्यो ज्ञानविज्ञानादिविषयेषु सम्यक् शिक्षिता आसन् । वैदिकसंहितासूपलभ्यन्ते ऋषिकाभिः रचितान्यनेकानि सूक्तानि । आस्वेव काश्चिन्नार्यः साङ्गोपाङ्गवेदादीनामध्ययनं कृत्वा आजीवनमविवाहिता एव कुमारश्रमणाः, कुमारप्रव्रजिताः कुमाराध्यापिकाश्च वभूवुः । परवर्तियुगेऽपि काश्चित् परमविदुष्यो नार्योऽजायन्त, शङ्करमण्डनमिश्रयो र्विवादे मिश्रस्य धर्मपत्नी एव निर्णायिकाभवत् । वस्तुतः

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शिक्षा स्त्रैणं पौरुषं वा विभागं नापेक्षते। स्त्रीणां पुरुषाणाञ्च शिक्षाक्षेत्रे समानाधिकारः।

न केवलं विद्याक्षेत्र एव अपि तु शिक्षितानामेवासामन्येष्वपि विविधेषु क्षेत्रेषु अनन्यसाधारणं महत्त्वं वर्तते। आस्वेव शिक्षितनारीषु काश्चन युद्धकलाविशारदा वीराङ्गना शस्त्रास्त्रसुसज्जिता महाबलशालिभिः प्रतिभटैः समं युद्धमकुर्वन् विजयञ्चाप्यवाप्नुवन्। ललितकलाक्षेत्रे तु एता एव शिक्षिता नार्यो विशिष्यन्ते।

परमस्माकं पारवश्यकाले स्त्रीशिक्षाविरोधः समजायत, सहशिक्षा तु सर्वथैव निषिद्धाभवत्। एवं शिक्षाया अभावे नार्य एताः पुरुषाणां दास्योऽभूवन्, बालका बालिकाश्चासां शिक्षाया अभावान्मातुरशिक्षिता अतएव धनोपार्जनसाधनहीना निर्बला रोगग्रस्ताश्चाभूवन्। स्वातन्त्र्यावाप्त्यनन्तरं पुनरधुना नारीषु शिक्षा प्रचलिता दृग्गोचरता मायाति, नाद्यत्वे नारीशिक्षाविरोधः, सहशिक्षापि महाविद्यालयेषु प्रचलिता एवास्ति। अद्यत्वे सर्वकारस्य जनतायाश्चापि नारीशिक्षाविषयेऽभिरुचिः परिवर्धमानैवावलोक्यते, सौभाग्यमेतद्देशस्येति।

२५

वर्षाकालः

ग्रीष्मातपकाले यदा प्रखरतरसूर्यगभस्तिभिरुत्तप्ता धरिणी शुष्कापिपासाकुला भवति, सरोवराःशुष्यन्ति, पादपा वीरुधश्च हरितपत्रराशिविरहिता जायन्ते; वन्यजन्तवश्च पादपानां लतानाञ्च सघनच्छायाभावे जलाशयानाञ्च जलाभावे व्याकुला इतस्ततः परिभ्रमन्ति, न क्वचिदप्याश्रयमवाप्नुवन्ति, पारस्परिकं नैसर्गिकमपि वैरभावमप-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हाय ग्रीष्मातपतप्ताः सिंहव्याघ्रगोमायुमृगादयः अहिमयूरादयश्च कुत्रचिद् विरलच्छायामाश्रित्य एकान्ते शेरते, पक्षिणश्च यत्र तत्र स्वस्वनीडेष्वेव निलीनास्तिष्ठन्ति। ग्रामेषु नगरेषु च मनुजा आतपलंघनाद् भीता गृहान्तरकक्षभाजो यावन्न सूर्योऽस्तं गच्छति न तावद् वहिरायान्ति। एवञ्च यदा सर्वमेव सचेतनं जगद् भीषणातपसन्तप्तं सत् संक्षुब्धं भवति तदा वर्षाकालः समायाति।

कालेऽस्मिन् गगनोत्पतितामभ्रमालां दर्शं दर्शं जनाः परमानन्दमनुभवन्ति। प्राचीपवनशीतला धरिणी हरितपरिधानधारिणी शोभते। नानावसूनि धारणशीला वसुमतीयं न भवेदुत्तप्ता सूर्यांशुभिः, नापि स्यात् तृषार्ता सन्तप्यमाना शुष्केति तां सङ्गन्तुकामाः पयोधरास्तामभितः समाच्छादयन्ति। वसुन्धरालिङ्गनोत्सुका अतएव वैहायसं मार्गमनुसरन्तो धावमाना मेघाः, न कदाचित् तिमिराच्छन्ने गगनमण्डले पादस्खलनं जायेत इति तिमिरौघापनयन्तीं स्वसहायां विद्युल्लतामादाय वसुमतीमारोढुकामा इवालक्ष्यन्ते। सर्वे प्राणिनो यथेच्छं जलमधिगम्य तृषां ग्रीष्मातपोत्तप्तिञ्चापहाय प्रसन्नवदनाः संदृश्यन्ते। भूमिरियं हरिततृणराशिधारिणी, जलौघापूरिताभिः सर्वतः प्रवहमानाभिः सरिद्भिः, जलपानतृप्तैरितस्ततो विचरद्भिः पक्षिभिः वन्यपशुभिश्च प्रसन्ना विशोभते। दिनकरगभस्तयश्च क्वचिन्मेघैः समाच्छादिताः क्वचिच्चोन्मुक्ताः सत्यः वसुन्धरामिमां क्वचित्प्रकाशवतीं क्वचिच्चान्धकारवती मित्यनेकवर्णचित्रितामिव कुर्वन्ति। तडागाः कासाराः अन्येऽप्यल्पजलाशया जलेनात्मानमाकूलं पूरयन्तः स्वोदरस्थितान् जीवान् ग्रीष्मर्तुपिपासापीडितानधुना तर्पयन्ति।

कृषका वर्षाजलेन भरितानि क्षेत्राणि संलक्ष्य मोदमाना वलीवर्दान् संयोज्य क्षेत्रकर्षणाय वहिरायान्ति। वर्षणजलेन तृप्ताः सम्यक् कृषकैराकृष्टा भूमिरन्नं कृषकेभ्यो ददाति। ते चास्मभ्यं येन बयं जीवामः।

यदा वर्षाकालेऽपि जलं न वर्षति तदा दुष्कालो जायते। न केवलमन्नाभावो भवति अपि तु वृक्षा लताश्चापि शुष्यन्ति, जलाशयाः

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सरितः कूपाश्चापि शोषमायान्ति, जलाभावेन प्राणिनः मानवाः पशवः पक्षिणश्च-म्रियन्ते। एतादृशे दुष्काले यद्यपि कृत्रिमसाधनैः कूपेभ्यो जल मवाप्य क्षेत्राणि सिच्यन्ते, प्राणिभिश्चेदं जलं पीयते, परं नानेन जलेन तृप्ति र्जायते, अतो वृष्टिरपेक्ष्यते यथाकालमिति।

२६

महाकविः कालिदासः

यद्यपि कवित्वप्रतिभाशालिनः सुबन्धुवाणदण्डिभवभूतिभारविमाघश्रीहर्षादयोऽनेके सूरयो भारतभुवमलञ्चक्रुः, स्वस्वरचनाविशेषैः संस्कृतसाहित्यं समुन्नतं विदधुः, अथ चैतेषां स्थितिकालोऽपि विज्ञायते संस्कृतसाहित्येतिहासेभ्यः अन्येभ्यश्चापि साक्षादसाक्षाद्वा निर्धारितेभ्यः प्रमाणेभ्यः प्रचलिताभ्यः जनश्रुतिभ्यश्च, तथापि येन कविताकामिनीविलासेन सुरभारतीमुकुटरत्नेन कविकुलगुरुणा संस्कृतसाहित्यमौलिलायमानानि सकलोत्तरवर्तिसंस्कृतसाहित्योपवनसेकस्रोतोभूतानि सचेतनचेतोहराणि वैदर्भीरीतिगुम्फितानि काव्यानि, सकलसंस्कृतसाहित्योद्यानकुसुमायमानानि, सुरभारतीजुषां सर्वेषां सहृदयानां कण्ठहारायितानि हृद्यानि विश्वव्यापिमहिमशालीनि नाटकानि विरचितानि तस्यैव कविकुलगुरोः कालिदासस्य स्थितिकालविषयकं जन्मस्थानचरित्रादिविषयकं वा न किमपि निर्विवादं समुचित मितिवृत्तपरिपुष्टं प्रमाणमधिगम्यतेऽद्यतनीयैरस्माभिः।

भारतीयप्राचीनपरम्परानुसारन्तु महाकविरयं विक्रमादित्यस्य कस्यचिदनैतिहासिकस्य नृपतेः सभाया एकं सर्वातिशायि कवित्वप्रतिभाप्रकाशितं रत्नमासीत्, अत्रैवानेन सर्वाणि स्वकीयानि काव्यानि नाट-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कानि च विरचितानि । परमियं कालदासस्थितिकालविषयिणी भारतीयपरम्परा काश्चिज्जनश्रुतीरतिरिच्य नैतिहासिकप्रमाणैः परिपोष्यते, अतो नेयं प्रमाणीक्रियते विद्वद्भिरद्यतनीयैः पौरस्त्यैः पाश्चात्यैश्चापि। एतै विद्वद्भिस्तु सामान्यतः कालिदाससमयःगुप्तयुगे चन्द्रगुप्तद्वितीयराज्यत्व कालेऽवधार्यंते, यतः हि तस्य राज्यकालोऽयमासीत् संस्कृतसाहित्यस्य पुनरुत्थानकालः। कालेऽस्मिन्नेव विविधसंस्कृतसाहित्यविधानुसारिणोऽनेके ग्रन्थाः प्रकाशमायाताः । चन्द्रगुप्तद्वितीयस्यास्यैवविक्रमादित्योपाधिधारित्वविषयेऽप्यस्ति सर्वेषा मेवैतिहासिकानां सम्मतिः । कालिदासेन स्वयमेव यत्र तत्र प्रसङ्गानुसारं विक्रमादित्योपाधिविषये स्वरचनासु संकेतो विहितः । अयमेव चन्द्रगुप्तद्वितीयः शकारातिरप्यासीत्, एतद्विषयेऽपि तद्ग्रन्थेषु संकेत उपलभ्यत एव । अतोऽद्यत्वे सर्वै रेव प्रायः कालिदासस्यायमेव समयो निश्चयेनावधार्यते ।

आस्तां तावत् तत्कालविषयिणी चर्चा । कालिदासस्य काव्यानि तथैव सचेतनचेतोहराणि यथा तस्य नाटकानि । यदि कोऽपि स्वदेशीयो विदेशीयो वा विद्वान्, न केवलं विद्वानपि तु सरसः साहित्यमर्मज्ञो विद्यावान् अभिलषति एकत्रैव, कवित्वमाधुर्यं, वैदर्भीरीतिरञ्जितं सर्वातिगामिकविमार्गं, वाह्याभ्यन्तरप्रकृतिचित्रणं, प्रकृतिरम्यत्वं, प्रकृतिलास्यं, प्रकृतिविलासं, प्रकृतिप्रभावं, सूक्ष्मेक्षिकया च प्रकृतिनिरीक्षणत्वञ्च, उदात्तकल्पनाचातुर्य्यं, चेतोहरं वाग्वैदग्ध्यम्, सुरम्यं शब्दार्थसौष्ठवं, रसानुगुणां कोमलकान्तपदावलीं, प्रत्यक्षरं प्रतिपदं माधुर्यं, न केवलमुपमायाः सर्वेषामेव प्रायः सादृश्यप्रतिपादकानामलङ्काराणां रसानुगुणं, भावानुकूलं स्वाभाविकं प्रयोगं, न केवलं शृङ्गारस्य करुणादिरसानामपि यथास्थानं सम्यगभिव्यञ्जनम्, प्रेम्णः सौन्दर्यस्य च भारतीयसंस्कृत्यनुकूलं वर्णनं, अतिगम्भीरामपि सर्वसाधारणबोधगम्यां, अत्युज्ज्वलामपि कोमलां, वैदग्ध्यविलसितामपि कान्तां, यत्र तत्र विस्तार मातन्वतीमपि यथास्थानं समाहृतां भाषाशक्तिं, चाधिगन्तुं, तेनावश्यमेवाध्येतव्यानि कालिदासरचितानि ग्रन्थरत्नानि ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कालिदासरचनानैपुण्यविषये तु नैके विशाला ग्रन्थाः प्रकाशन्ते अतः तद्विषये नात्र किमप्यधिकं वक्तव्यम्; इत्येवात्र दिङ्मात्र मुदाह्रियते, यदस्ति महाकविरयं संस्कृतसाहित्ये मूर्धाभिषिक्तः कविकुलकमल-दिवाकरः कविकुलगुरुश्चेति; न कालिदाससमो भूतो न भविष्यतीति ।

२७

नारीशिक्षा कीदृशी भवेत्

नात्र विवादः, यदद्यत्वे नारीशिक्षा सर्वाधिकं महत्त्वमाधत्ते । स्त्रीणां शिक्षाविषये तद्वैदुष्यावाप्तिविषये वा प्राचीनकालादेव सर्वेषामेव शिक्षितानामशिक्षितानाम्वा एकरूपैव सम्मतिरासीत्, फलतः न केवलं वैदिककाले तदुत्तरकाले चापि मानवजीवनस्य प्रायः सर्वक्षेत्रेषु नार्योऽपि तथैव शिक्षिताः स्वकार्यकुशला विदुष्योऽभवन् यथा पुरुषा विद्वांसः स्वकार्यनिपुणा आसन् । अतो नात्र नारीशिक्षाविषये विचारः, अपि तु नारीशिक्षा कीदृशी भवेदिति विषये एवात्र विचारः क्रियते ।

प्राचीन काले शिक्षिता वेदवेदाङ्गपारङ्गता अपि नार्यः आदर्श-गृहिण्योऽप्यासन् । गृहस्थजीवनोपयोगिसमस्तकार्यव्यापारसञ्चालन-विधौ तु ता विद्यापारङ्गतेभ्योऽपि पुरुषेभ्यो विशिष्टा आसन् । शिक्षा-ग्रहणकाले शिक्षालयेषु न केवलं ताभि र्विविधविषयोयरञ्जितानां पुस्तकाना मध्ययनं, तदनुचिन्तनं, तदनुमननमेव वा क्रियत अपि तु तत्रोपलब्धसाधनेभ्यः सर्वविषयज्ञानवद्भ्यःगुरुभ्यश्च ताभिः स्त्रीजनो-चितसर्वविधाः शिक्षाः नृत्यगीतादिकलाज्ञानञ्चागृह्यत, अत एव ता यथा विद्याक्षेत्रे निष्णाता स्तथैव गृहस्थजीवनक्षेत्रेऽपि कुशला अत एव आदर्शगृहिण्य आसन् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परमद्यत्वे यद्यपि पाश्चात्यशिक्षाशिक्षिताः शिक्षाविदः सर्वकारानुमता अधिकारिणः नारीशिक्षया देशस्य समाजस्य परिवारस्य चोन्नतये प्रयतमाना दृश्यन्ते परं नारीशिक्षया कीदृश्या भवितव्यमिति ते नानुचिन्तयन्ति। ते सम्भवतो मन्यन्ते यद् यादृशी शिक्षा, यादृशा विषयाः, यादृशा विद्यालयाः, यादृशं वातावरणं वा बालकानां कृते अपेक्ष्यते तादृशमेव वालिकानामपि कृते लाभकारि भविष्यति, या चाद्यतनीया शिक्षापद्धतिश्च सैव सर्वेषामेवोपयोगिनी भविष्यतीति, परं नैतत्समीचीनम्। पुरुषक्षेत्रान्नारीजीवनक्षेत्रं क्वचिद् भिद्यते क्वचिद् विशिष्यते चापि। अद्यतनीया शिक्षा शिक्षापद्धति र्वा न नारीजीवनोपयोगिनी। कुर्वन्तु नाम नार्यो विश्वविद्यालयीयपाठ्यक्रमनिर्धारितानां पुस्तकानामध्ययनम्, लभन्तां नाम परीक्षाब्धिसमुत्तरणादनन्तरं विविधान् विशिष्टानुपाधीन्, परं ता विधिनानेन नावाप्तुं प्रभवन्ति भारतीयसंस्कृत्यनुकूलं सभ्यताशिष्टाचारानुगुणं गृहस्थजीवनोपयोगि ज्ञानम्।

वस्तुतः पाश्चात्यवातावरणेन प्रसारितेयं तथाकथिता नारीशिक्षा अस्माकं परम्परागताः परिशुद्धा विचारधाराः सांस्कृतिकभावनाः उत्तमोत्तमा मनोवृत्तीश्च विनाश्य हठाद्, भारतीयदेवीनां जीवने पाश्चात्यविचारभारं पाश्चात्यवेषं पाश्चात्यजीवनादर्शं निधाय अस्माकं कौटुम्बिकजीवनस्य शान्तिविघातिका एव भविष्यति। शिक्षयानया शिक्षापद्धत्या वा आर्थिकावस्थायाः संशोधनस्य, नारीजनोत्थानस्य, शान्तिस्थापनस्य, सुखस्य, सौहार्दस्य, संस्कृतिसंरक्षणस्य, अभ्युदयसाधनस्य, सभ्यतायाश्च विकासस्य च कामना तु मृगमरीचिका एवास्ति। आङ्गलशिक्षापद्धतिरियन्तु न कदापि नारीजीवनोत्कर्षसाधिका भविष्यतीति भारतीयसंस्कृतिजुषां विदुषाम्मतम्।

नारीशिक्षया त्वीदृश्या भवितव्यम्, यया भारतीयं कौटुम्बिकं गार्हस्थिकञ्च जीवनं सुखमयं भवेत्, यया च नारीहृदयेषु त्यागस्य, सहिष्णुतायाः, समर्पणस्य, सेवायाश्च, भावाङ्कुराणि पल्लवितानि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कुसुमितानि च भवेयुः। यया च भारतीयनारीपूतहृदयेभ्यः पाश्चात्यशिक्षाप्रगुणीकृता वासनामयाहारविहारप्रसाधनादिविकारा निर्गच्छेयुः, फलतः राष्ट्रस्य समाजस्य परिवारस्य च समुन्नति र्जायेत इति।

२८

ऋतुवर्णनम्

सत्स्वप्यन्येषु देशेषु, जगन्निर्मातुः विधातुः पुष्पोपवनन्तु भारतमेवास्ति, अत एव तेनैव प्रादुर्भाविता आत्मोद्यानशोभावर्धनाय, सिञ्चनाय च तत्रारोपितानां पादपानां लतानाञ्च, षड्ऋतवः प्रतिवर्षं यथाकालं पर्यायेण भारतवर्ष मायान्ति यान्ति च। देशस्यास्य समृद्धये सर्वेषामेव ऋतूनां महद् योगदानं विद्यते। सर्व एव ऋतवो यथाकालं सर्वहितसाधकाः, स्वास्थ्यकराः, पुष्टिप्रदाः, धनधान्यादिविवर्धना, जनमानसोल्लासविधायिनश्च सन्ति। सर्व एव च स्वस्वस्थाने प्राधान्यं भजन्ते। परं 'ऋतूनां कुसुमाकरः' इति गीतोक्तिदिशा सर्वेषु ऋतुषु वसन्तस्यैव प्राधान्यं प्रतीयते, अत एवायम् 'ऋतुराज' इत्याख्यया-ख्यायते।

विषमेषुनिदेशं शिरस्यादधता, कुसुमकलिकाश्च विकासमानयता, शिशिरशैत्यसन्तप्तान् नानाविधान् जीवान् सान्त्वयता, मधुपानरसिकेभ्यः मधुकरेभ्यः मधुमधुरान् सहकाररसान् निष्पादयता, विमनायमानानि कामिजनमनांसि समुल्लासयता, पुंस्कोकिलानां रुतं परिवर्धयता, ऋतुराजेन आगम्यते। अस्मिन् ऋतौ सम्भृतकुसुमशोभां विनम्रां हरितवसनां कुसुमाभरणवतीं कोमलकान्तमनोरमां लतामालिङ्गन्,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सरोवरेषु विकसितानां कमलानां सौरभमावहन्, छायाद्रुमतलेषु विश्रम्य विश्रम्य मन्दं मन्दं मलयाचलवायु र्वाति। वसन्तसमये–उपवनानां शोभा विवर्धते। उद्भूयमानैः नवकोमलपल्लवैः विविधवर्णैः सुरभितैः कुसुमैः विभूषिता, मधुपानमत्तैः मधुकरैरुद्गीता च वनस्थली सर्वेषामेव चेतांसि वशीकुर्वतीवावलोक्यते। कलकण्ठमण्डली च मधुरं गायन्ती रसिकजनकर्णकुहरेषु सुधारसं वर्षन्तीव वृक्षादवृक्षान्तरमुत्पतन्ती दृश्यते। यद्यपि पुष्पभारावनता नवोद्गतकिसलयैरुद्भासिताः सर्व एव पादपाः वसन्ते विशेषेण शोभन्ते तथापि सहकारस्य तु कापि वसन्तेऽद्वितीया एव शोभा जायते। सहकारमञ्जरीणां रजोभिः सकला दिशः पिञ्जरीकृता इव विभान्ति। परितो मधुव्रतव्रातैरावृता वृतत्यस्तरुभिः सार्धं मिलित्वा विलासं कुर्वत्योऽवलोक्यन्ते, एवमेव मृग्यश्च मृगैः साकं विहरन्त्यो मोदन्ते। किमधिकं वसन्ते सर्वमेव भवति परमानन्ददायकम् मनोहारि च।

वसन्तादनन्तरं सरितां सरसां च सलिलानि संशोषयन्, दिनानिवृद्धिमानयन्, अहस्करस्य प्रखरकरैः जगत्तापयन्, वन्यान् जीवान् पिपासया व्याकुलीकुर्वन्, हरिता लताः कुसुमानि च म्लापयन्, आदित्यातपतापेन पथिकानुद्वेजयन् भीषणो ग्रीष्माभिधानः ऋतुः प्रवर्तते। अस्मिन् ऋतौ प्रचण्डांशुखरकरान् सोढुमक्षमा जना गृहद्वारं पिधाय परितो निरुद्धगवाक्षरक्षितमरुति गृहे एव निलीयन्ते। दिवसावसाने एव वहिरागत्य विचरन्तोऽत्यावश्यकं गृहकार्यं विदधति। न केवलं पशवः पक्षिणश्चापि आहारान्वेषणमपि विस्मृत्य चण्डांशुतापोत्तप्ता यत्र कुत्रापि विरलच्छायामेवाश्रित्य दिनानि नयन्ति। पिपासवः पान्थाः कुतश्चिदप्यन्विष्य सरसां सरितां वा पत्रसंकरकषायाणि मलिनान्यपि सलिलानि पायं पायं न तृप्ति मायान्ति। दिनकरप्रखरकराश्रयोष्णा वाताः कुत्रचिद् झञ्झावाताश्च वान्ति। ऋतावस्मिन् ग्रीष्मोष्णवातलंघनात् कियन्तो मनुजन्मानः पशवः पक्षिणश्च अकालकालकवलिता जायन्ते। वस्तुतो निदाघकालो दिवा अग्निस्फुलिङ्गानेवोद्गिरति, विश्वं परितापयति च।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निदाघे क्षयमापन्ना अपि क्षणदाः सुखयन्ति । पीयूषवर्षी शर्वरीश्वर एव दिनकरखरकरतापतप्तानां प्राणिनां शरणं भवति निशायाम् । शस्यविरहिता धरिणी अपि सन्तप्यते ग्रीष्मातपेन, केवलमुपानद्‌गूढपादा एव भूमौ चलितुं क्षमन्ते । भीष्मोऽयं भवति सर्वेषामेव ग्रीष्मकालः ।

ग्रीष्मकालावसाने प्रखरतरसूर्यांशुसन्तप्तां पिपासाकुलां धरिणीं पयः पाययन्, सरांसि सरितश्च सलिलैरापूरयन्, ग्रीष्मातपशुष्कान् वृक्षान् वीरुधश्च हरितीकुर्वन्, स्तनयित्नुगर्जितेन मयूरान् नर्तयन्, उद्दाम-ग्रीष्मातपेन मरणोन्मुखेषु जीवेषु जीवनं सञ्चारयन् वर्षाकालः समायाति ।

अस्मिन् ऋतौ जलदेऽभ्युदिते, निशाकरे दिनकरे च अन्धकाराच्छन्ने सति, प्रवृत्ते दुर्दिने न लोको गन्तुं न वा किमपि कर्तुं पारयति, अपि तु गृहे तिष्ठन्नेव दिनं गमयति । हरितपरिधानधारिणी धरिणी विशेषतो विराजते । क्वचिद् घनगर्जितानि श्रावं श्रावं मयूरा नृत्यन्ति, केकाभिश्च जनमनांसि प्रीणयन्ति । क्वचिन्मृगशावका धावन्ति, क्वचित् पक्षिणो गायन्ति, क्वचिद्धरितं हरितं घासं चरन्त्यो गावः वत्सान् पयः पाययन्ति, क्वचिद्धर्षप्रकर्षमातन्वानाः कृषकाः क्षेत्राणि कर्षन्ति, क्वचिद् भयावहावर्तसहस्राकुलाः सरितः सलिलरयैस्तटानि विपाट्य तथैवोन्मार्गं गच्छन्ति यथा उत्कुलाः कुलमर्यादामुल्लंघ्य स्वच्छन्दचारिण्यो यथेच्छं यत्र यत्राभिलषन्ति तत्र तत्रैव यान्ति । प्रावृषि अचिरद्युतयोऽपि विद्युत एव केवलं अन्धं तमो विदीर्य क्षणं प्रकाशन्ते । पथिकानेव केवलमतिरिच्य ऋतुरयं सर्वानेव जीवान् सुखयति विशेषतः कृषकान् ।

वर्षासमयापगमे स्वच्छीकृतदिग्विभागः शरदृतु; प्रवर्तते । अस्मिन् ऋतौ सरितोऽनुदिनं कार्श्यं प्राप्नुवन्ति । नभोमण्डलं व्यभ्रं स्वच्छं वा जायते । शरतृणान्युत्पद्यन्ते, धान्यानि पीतवर्णानि पक्वानि च जायन्ते । चन्द्रानना विमलाम्वरा शरत् सर्वस्य सचेतसश्चेतः प्रसादयति। कमलानां

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नवनवोद्गतं मधुरं मकरन्दं मन्दं मन्द मापिवन्तो मिलिन्दा मञ्जु गुञ्जन्तोऽनुरञ्जयन्ति मनांसि मनुजानाम्। विगतवारिधरे विमले वियति विद्योतमानो हिमांशुः हिमगर्भैः करनिकरैः नितरां विभाति। विविधकुसुमामोदै र्मोदिता धान्यविभूतिविभूषिता अनाविलेला प्रसन्ना प्रतिभाति। मानसरोवरात् प्रत्यागता हंसाः सरस्सु केलिं कुर्वन्तो विभ्राजन्ते। एकतो मयूराणां केकाः अपरतश्च परितः क्षेत्राणि सारसरसितानि श्रावं श्रावं, प्रसन्ना सर्वतो निर्मलाः प्रकाशमाना दिशश्च दर्शं दर्शं जनाः परमानन्दममन्दमनुभवन्ति।

शरदवसाने हेमन्तसमयः प्रवर्तते। अस्मिन् ऋतौ प्राप्तप्रसरो हिमो दिनकरकरतेजोऽधरीकृत्य न्यक्कृत्य च चन्द्रमसो ज्योत्स्नां, क्षपाविवर्धनेन जनानां दैनिककर्मजं श्रमं दूरीकृत्य, कवलीकृत्य च कमलकाननानि सर्वतः प्रसरति। कमलकमलिनी वियोगादाकुलिता मधुविधुरा मधुपाः पादपात् पादपान्तरं गच्छन्तोऽपि न विश्रान्तिं लभन्ते, नीहारशीतं सलिलं पिपासवोऽपि पशवः पक्षिणश्च न यथेच्छमापिवन्ति। दिवसाश्चानुदिनं कार्श्यमुपयान्ति, क्षपाश्च विवर्धन्ते; अग्निः लोकेभ्योऽधिकं रोचते, न रोचते जलम्। अनेके दीनाः प्राणिनो हिमपातप्रकम्पिताः कदाचिद् गतासवोऽपि जायन्ते। दिनकरोऽपि शिथिलकरो भवति। किमधिकं हेमकालिकं शैत्यं सर्वमेव संसारं वाधते।

हेमन्तसमयापगमे शिशिरसमयः। अस्मिन् ऋतौ विकसितैः निर्मलकुन्दकुसुमैः स्मितमातन्वती वसुमती विशोभते। नवोद्गतेषु धान्याङ्कुरेषु निपतिताः तुहिनशीकरकणा विराजन्ते। तुषारावृता दिशा न प्रकाशन्ते। शिशिरशोषितोत्साहाः शरीराण्याकुञ्च्य दन्तवीणां वादयन्तः कपयो वृक्षमूले निलीयन्ते। कूपजलान्यतिरिच्य सर्वाण्येव जलानि शीतलानि स्पर्शासहानि स्नानानर्हाणि च भवन्ति। प्रदीप्तोऽग्निरेव शरणं भवति शिशिरकाले। सूर्यकरोष्णत्वमपि शैथिल्यं भजते। यदा कदा जलदो न केवलं जल मुपलमपि वर्षति, येन पक्वधान्यभरितानि क्षेत्राणि विनश्यन्ति। अतिकरकावृष्ट्या कदाचिद् वृक्षा निप-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तन्ति, पशवो वनेचराः खगाश्चोत्पतन्तो म्रियन्ते । एवं शिशिरोऽयं सर्वं जगत् प्रवाधते ।

२६

पाठशाला

पाठानां शाला 'पाठशाला'—शब्देनानेन अध्ययनभवनं गृह्यते । विद्यालयशिक्षणालयादयोऽपि शब्दा अस्यैव पर्यायवाचिनः समानार्था वा प्रतीयन्ते, परं यतो न पर्यायवाचिनः शब्दा लोके प्रचलन्ति, समानार्थाः शब्दाः प्रयोगदृशा भिद्यन्ते । सूक्ष्मार्थभेदेन समानार्थवत्प्रतीयमाना अपि शब्दा लोकप्रयोगप्रवाहनिपतिताः सूक्ष्मार्थभेदेन सह व्यवह्रियन्ते । दृशानया पाठशालाशब्देनाद्यत्वे संस्कृतपाठशाला गृह्यते ।

पाश्चात्यशिक्षायाः प्रचारात् पूर्वं देशेऽस्मिन् संस्कृतभाषायाः प्रचार आसीत् । एतदर्थं बहुविधाः पाठशालाः स्थाने स्थाने ग्रामेषु नगरेषु वनेषु च स्थापिता आसन् । वेदवेदाङ्गपारङ्गतानां विद्वद्वराणामाचार्याणां सन्निधौ तन्निर्देशकत्वे आसु पाठशालासु सर्वजातीयाः सर्वसम्प्रदायावलम्बिनः छात्राः संस्कृताध्ययनञ्चक्रुः । गुरवश्चात्र पुत्रवद्वात्सल्यमाश्रित्य छात्रानध्यापयन्ति स्म । पाश्चात्यशिक्षाप्रसारेण आसां पाठशालानां ह्रासो जातः । अद्यत्वे अङ्गुलिनिर्देश्या एव पाठशाला यत्र तत्र श्रूयन्ते । यदा संस्कृताध्ययनमुपेक्ष्य विशालेषु सुसज्जितेषु विद्यालयभवनेषु आङ्गलवेषधारिणः छात्राः आङ्गलभाषाध्ययनाय समागताः, तदा इमाः परम्परागताः संस्कृताध्ययनशाला विशालाः पाठशाला नाममात्रशेषा जाताः । किं कार्यमेताभिः पाठशालाभिः अथ च जीर्णया शीर्णया जर्जरितया च संस्कृतभाषया वा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इत्युपेक्ष्य लोकाः अध्ययनार्थं विदेशीयभाषायाः आधुनिकसुखसाधनोपजुष्टान् अद्यत्वे सर्वत्र प्रचलितान् विद्यालयान् प्रति समाकृष्टा बभूबुः, यतो हि विद्यालया इमे न तु ताः पाठशालाः, तेषां जीविकादानक्षमा आसन्, तेषां वेषानुकूलगामिनः आचारानुकूलगामिनश्चासन्, अतस्तान् प्रत्याकर्षणं स्वाभाविकमेवासीत् । कालगत्यानया नाद्यत्वे ताः पाठशालाः, न ते सर्वविद्यापारङ्गताः तपश्चरणनिपीडितशरीराः ऋषिकल्पा विद्वद्धौरेया आचार्या उपाध्याया गुरवश्च, नापि ते वेदध्वनिपरिपूता वनाश्रमाः, न ते ब्रह्मचारिणो विद्यार्थिनः, न ता विद्या, न ताः कलाः न तच्छिल्पम्, न तत्सर्वं यदासीत् । सर्वमेव कालेन कवलीकृतम्, पाठशालाश्चापि कवलितास्तेन अतो किमनेनारण्यरोदनेन ।

पाठशालानामासामिदानीं महत्त्वप्रख्यापनस्य न किमप्यौचित्यं प्रतिभाति । ऐश्वर्यशालिनः सर्वसाधनजुषो धनिनः, येषां धनदानेन साहाय्येनेमाः पाठशालाः सञ्चालिता जनसेवापरा आसन्, अस्मादनावश्यकव्ययाद् विमुखा जाताः । साहाय्यविहीनाः शासनाधिकारिभिरूपेक्षिता अध्येतृभिश्चापि परित्यक्ता इमाः पाठशाला न केषामपि, वैज्ञानिके अर्थकामपरे युगेऽस्मिन्, मनांसि हरन्ति, न कोऽप्यासां स्थिति मभिवाञ्छति । किं कार्यं माध्यात्मिकज्ञानेन धर्माचारोपदेशेन संस्कृतिगीतेन वा यल्लभ्यते संस्कृतपाठशालाध्ययनात्प्राधान्येन, अभीष्टभौतिकसाधनजुषो यदा सन्त्येवेमे विद्यालया इति । दशानया पाठशाला स्तु विलुप्तप्राया जाता एव, संस्कृताध्ययनमप्येवमेव श्वसिति । परमत्र किमस्ति भविष्यगर्भे, कास्ति विधातुरीहेति चिन्तनीयम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३०

गद्यकविः वाणः

संस्कृतकविषु एकः वाण एव एतादृशः कविः यस्य जीवनवृत्तस्य स्थितिकालस्य च विषये पर्याप्तमस्माकं ज्ञानम् । 'हर्षचरिताख्यात्मकृतौ महाकविवाणभट्टेन स्वयमेवात्मचरितमुपवर्णितम् । तदनुसारं महाकविरयं चित्रभानोः राजदेव्यामजनि । परं जननान्तरमेवायं मातृविहीनः केवलं पित्रैव परिपालितोऽभवत् । परं दौर्भाग्यादुपनयनसंस्कारादनन्तरमेवायं पितृविहीनोऽपि जातः । अतो योग्याभिभावकाभावादयमेकदा सहसैव कतिपयैः स्वमित्रैः सह पर्यटनाय स्वनिवासस्थानप्रीतिकूटग्रामान्निर्ययौ । पर्यटनकाले यथाकालमयं राजकुलानि, ऋषिकुलानि, गुरुकुलानि, आचार्यगृहाणि समुपेत्य यथासमयं तान्यध्युष्य स्वकुशाग्रबुद्धिसाहाय्येन विविधविषयपराणि शास्त्राणि समधीत्य लोकानुभवमधिगम्य लोकस्थितिं चाभिज्ञाय राजकुलोचितव्यवहारं राजोचितशिष्टाचारं राजवैभवञ्च निरीक्ष्य विद्वज्जनोचितं पर्याप्तं ज्ञानमवाप्य स्वनिवासभूमिं प्रत्यागच्छत् । महाराजेन हर्षवर्धनेनाकारितस्तत्रोपेत्यायमात्मविद्यया कवित्वप्रतिभया गुणगरिम्णा च तं तोषितवान्, फलतः राज्ञा 'वश्यवाणी चक्रवर्ती' इत्युपाधिना विभूषितः सम्मानितश्चायं तस्यैव राजसभाकविरत्नमभूत् । अत्रैव राजसभामलंकुर्वतानेनानेकग्रन्था विरचिताः । एषु हर्षचरितेत्याख्याताख्यायिका संस्कृतगद्यकाव्यसाहित्यसागरे गद्यकाव्यरत्नान्यन्यान्यधरीकृत्य अद्वितीयेन स्वप्रकाशेनाद्यापि चकास्ति । ग्रन्थरत्नेऽस्मिन् वाणेन, स्वजीवनवृत्तम्, हर्षवर्धनस्य राज्ञश्चरित्रम्, तस्यपितुः ज्येष्ठभ्रातुश्च वैभवं, शौर्यम्, शासनम्, स्नेहम्, प्रभावम्, चातुर्य्यम्, जीवनम्, मरणञ्चेत्यादीनि सर्वाणि, हर्षवर्धनस्य च लोकातिगं राजोचितवैभवम्, सैन्यम्, सेनाङ्गभूता भटाः, विशालकायाः पर्वताकारा युद्धक्षमा दिग्गजा इव गजाः, वातवेगशालिनो विजयिनो वाजिनः, तीक्ष्णात्तीक्ष्णतराणि निशितानि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

शस्त्राणि अस्त्राणि चेत्येतानि, हर्षवर्धनस्य भगिन्याःराजश्रियश्चरित्रम्, इत्येतानि हर्षवर्धनजीवनसम्वद्धानि सर्वाण्येव यथाप्रसङ्गमुपवर्णितानि। ग्रन्थस्यास्य मूल्याङ्कनदृशा तु इत्येव पर्याप्तम् यदस्मिन् ते सर्वं एव काव्योपयोगिनो गुणा वर्तन्ते ये सन्त्यपेक्षिता एकस्य सर्वश्रेष्ठस्य गद्य-काव्यस्य कृते।

महाकविवाणभट्टस्य कादम्वरीत्याख्याता द्वितीया रचना एवास्य शुभ्रां कीर्तिं सर्वासु दिक्षु देशदेशान्तरेषु चिरस्थायिनीमकरोत्। यद्यपि कादम्बर्याः कथायाः कथानकेऽनेकावान्तरकथाप्रसंगेनावश्यमेव किञ्चि-च्छैथिल्यमागतम, तथापि तस्य नैसर्गिके विकासे कुशलनिर्वाहे च कविनावश्यमेव साफल्यमधिगतम्। न केवलं कादम्बरीकथा मनोहरा विद्वज्जनमानसोल्लासिनी सुरम्या रमणीव चेतोहरै र्भावैरवचनीयैः यथाप्रसङ्गमभिव्यञ्जितै रसैः, सालंकृताभिरपि श्लेषमयीभिरपि कोम-लकान्तपदावलीभिः सामान्यजनानामपि मनोहरति, अपि तु आदित एवेयं कौतूहलमयी अध्येतुरुत्तरोत्तरमुत्कण्ठाविवर्धिनी कल्पनामयी भूत्वापि रुचिकरी सर्वसचेतनचेतोहारिणी प्रतिभाति।

शुकनासोपदेशः, कपिञ्जलस्य प्रणयकोपभणितानि, अच्छोदसरो-वर्णनम्, जावाल्याश्रमवर्णनम्, महाश्वेतावर्णनकल्पनाचातुर्य्यम्, काद-म्वर्या महाश्वेतायाश्च सौन्दर्यं मूकप्रणयनिवेदनञ्च, वाह्याभ्यन्तर-प्रकृतिचित्रणम्, भारतीयसंस्कृतिसभ्यताशिष्टाचारादिवर्णनकौशल-ञ्चेत्यादीनि सन्त्यस्याः कथायाः सर्वोत्कृष्टानि निदर्शनानीति।

३१

गुणाः पूजास्थानम्

जगतीतलेऽस्मिन् प्रायः सर्वं एव प्राणिनः पूजायै प्रतिष्ठायै वा सततं प्रयतमाना दृश्यन्ते। परं न ते सर्वेऽवगच्छन्ति यत्किमस्ति पूजाकारणम्,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

केन कीदृशेन वा कर्मणा हेतुना वा पूजा लभ्यते, पूजावाप्तये किं विधेयम्, कुत्र यतनीयमिति च । तान् प्रत्येवेयमुक्तिः—

"गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः" ।

अर्थात् गुणकारणादेव जनः पूजां लभते, न लिङ्गकारणाद् वयसः कारणाद् वा । लोके पूजा न स्त्रीपुंस्त्वादिनिबन्धना नापि वयोनिबन्धना अपि तु केवलं गुणनिबन्धना एव । यदि लिङ्गं वयो वा दयादाक्षिण्यादिभिः प्रज्ञामेधादिभि र्वा गुणैः सह मिलति तर्ह्येतयोरप्यस्ति सार्थकत्वम् अन्यथा निरर्थकत्व मेव । नहि लिङ्गविशेषेण वयस आधिक्येन वा प्रतिष्ठा लभ्यते, एवमेव जातिरपि न प्रतिष्ठाधायिनी, अपि तु गुणप्रकर्षतन्त्रा हि लोके प्रतिष्ठा, पूजा वा । गुणै र्हि सर्वत्र पदं निधीयते, न वयसा, न लिङ्गेन, न जात्या, न धनेन, न वलेन, नापि गुणविहीनया विद्ययापि । अतः सत्यमिदमुच्यते—

"गुणेषु यत्नः पुरुषेण कार्यः, न किञ्चिद प्राप्यतमं गुणानाम् ।
गुणप्रकर्षादुडुपेन शम्भो, रलङ्घ्यमुल्लंघितमुत्तमाङ्गम् ॥"

न केवलं मानवाः पक्षिणोऽपि गुणप्रकर्षादेव बहुमानं लभन्ते । पिकः काकानतिशेते, गुणादेव शुकादयः सत्क्रियन्ते, तिरस्क्रियन्ते चान्ये । पुरुषाः केवलं पुंस्त्वेन, स्त्रियश्च केवलं स्त्रीत्वेनैव लिङ्गेन, न पूजार्हाः, अपि तु सत्कर्मावाप्तकीर्तयः पुरुषाः लोकातिगगौरवान्विताः स्त्रिय एव पूज्यन्ते लोके, एवमेव गुणवानेव बालो वृद्धो वा पूज्यो भवति । यां कामपि गुणविहीनामपि स्त्रियं ये खलु पूजयन्ति, सौन्दर्यमात्रैकपक्षपातिनस्ते मूर्खा एव, वृद्धोऽयं वृद्धोऽयमिति ब्रुवाणा ये खलु दयादाक्षिण्यादिसंगीतसाहित्यकलादिविहीनमपि वृद्धमर्चयन्ति तेऽपि नौचित्यं जानन्ति पूजायाः । राजलिङ्गयुक्ते राजनि राजपुरुषे वा न पूजार्हत्वमपि तु गुणवत्येव राजन्येतत् सम्भवति । गुणराहित्यादेव महाराजाधिराजं महानन्दं गुणगणगुम्फितो ब्राह्मणः तिरस्कृतवान् । देवैरप्यनुल्लंधनीयशासनं लोकत्रयविश्रुतपौरुषं सहोदरमपि रावणं गुणराहित्यादेव

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विगणय्य विभीषणः शरणागतवत्सलं दयासागरं राममुपजगाम। वालो वासुदेवो ध्रुवो वा यदि पूजास्थानं तर्हि गुणप्रकर्षादेव। एवमेव यदि केचन वृद्धाः पूज्यन्ते तर्हि ते गुणगरिम्णैव न तु वयसः प्रभावेण। एतेन सिद्धयति यत् केवलं गुणा एव पूजास्थानं न तु गुणिषु वर्तमानाः स्त्रीत्वपुंस्त्ववालत्ववृद्धत्वादयः।

गुणा एवैकान्ततः पूजास्पदम्। विद्याप्यस्ति पूजास्थानम् यदि अधीतविद्या गुणवन्तोऽपि स्युः। शास्त्राध्ययनमात्रमेव न पूजास्पदमपि तु शास्त्रानुकूलाचरणोपार्जितसद्गुणा एव। अत एवोच्यते—

'शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्।'

एतदभिलक्ष्यास्माभिर्गुणोपार्जन एव यत्नो विधेयः।

३२

विधि रहो बलवानिति मे मतिः

भाग्यपुरुषार्थयोस्तु चिरन्तनो विवादः, कदाचिद् भाग्यस्य कदाचिच्च पुरुषार्थस्य प्राधान्यं दृग्गोचरतामुपैति। केषाञ्चिन्नीतिविदाम्मतमिदमस्ति यद् भाग्यं दैवमेव वा सर्वत्र वलवद् भवति, नैव पुरुषार्थः। सुखं दुःखं सम्पद् विपद् वा विधिना विधीयते, अनुकूलविधिवशादेव जनो लभते सुखैश्वर्यादिकं न तु स्वकीयेन पौरुषेण परिश्रमेण वा। पुरुषार्थी न किञ्चिदपि कर्तुं प्रभवति, प्रभवति तु केवलं दैवमेव। परिदृश्यन्ते हि लोके परिश्रमशीला, उद्यमिनः, सततं कार्याभिरता, बुद्धिमन्तः, वलवन्तश्च जना दरिद्राः, परमुखापेक्षिणः, परनिकृष्टसेवापराः, परान्नोपजीविनः, परमैश्वर्यशालिनां द्वारि निषण्णा स्तच्चरणावपातेन वदनोदरदर्शनेन च श्वेव स्वोदरपूर्तिं कल्पयन्तः, सततं दुःखोदधि-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निमग्नाः प्रतिकूलगामिनि विधौ, अथ चानुकूलगामिनि विधौ मूढा, अलसा, निरुद्यमिनोऽपि सुखेन जीवनं यापयन्तः।

अथ चैवमप्युदाहरन्ति भाग्यस्यैव प्राधान्यं प्रमाणयन्तो भाग्यवादिनः—'पुरुषार्थश्चेत् सर्वकार्यसिद्धिकरः कथमकृतप्रयत्ना अपि साफल्यमधिगच्छन्ति, कथञ्चार्थसाधकेषु विविधेषु व्यापारेषु सततं विहिताभियोगा अपि विफलीभवन्ति। कथं मेधाविनोऽविश्रान्तपरिश्रमजुषश्चापि छात्रा अवतीर्णा भवन्ति, कथञ्चालसा निरुद्योगिनः प्रत्यहं, विविधेषूपद्रवेषु समयं गमयन्तोऽध्ययनपराङ्मुखाः परीक्षामुत्तरन्ति। कथं कठिनोद्योगपरा यथासमयं क्षेत्रकर्षणं बीजवपनं जलसेकं च कुर्वन्तः कृषका यथासमीहितं धान्यं नाप्नुवन्ति। यदि नास्ति केवलं दैवमेव बलवत् तर्हि कथं गगनविहारी, कल्मषध्वंसकारी दशशतकरधारी ज्योतिषां मध्यचारी अपि विधुः राहुणा ग्रस्यते, कथञ्च मर्यादापुरुषोत्तमस्यापि रामस्य स्वर्णमृगाय लोभोऽभवत्, महामहिमशालिनां शक्तिशालिनाञ्च पाण्डवानां वनवासो जातः इति।

परं पुरुषार्थवादिभिस्तु एतद्विपरीता वाचोयुक्तयः समुपस्थाप्यन्ते—ते मन्यन्ते यत्पुरुषकारं विना जनो नाल्पमपि कार्यं साधयितुं क्षमते, आनन्दयन्तु नामात्मानं मनोरथमात्रेणैव परमं दैवं मन्यमानाः कापुरुषाः, परं नैतेन तेषां कार्यसिद्धि र्जायते; कार्याणि तूद्योगेनैव सिद्ध्यन्ति न मनोरथमात्रेण, सुप्तस्य सिंहस्य मुखं न प्रविशन्ति मृगाः, सज्जितं भोजनं न स्वयमेव मुखमाविशति, क्षेत्रकर्षणं वीजवपनं जलसेकं यथाकालं यदि न कुर्वीत कृषकः, दैवस्यैव प्राधान्यं प्रमाणयन् गृह एव तिष्ठेत्, कथं तस्य धान्यागमः स्यात्। अतो निश्चीयते पुरुषार्थ एव केवलं सर्वसिद्धिकरो, न दैवम्, दैवमुपेक्ष्य कापुरुषाणां दैवपराणि वचांसि तिरस्कृत्य यथाशक्ति पुरुषार्थो विधेयः, अवधेयञ्च नीतिनिष्णातस्याचार्यचाणक्यस्य वचनमिदम्—"दैवमविद्वांसः प्रमाणयन्ति", किमेतन्नाम दैवम्, कृतकर्मपरिणतिरेव वस्तुतो दैवं नान्यत्, यदि पूर्वकृतं कर्म न स्यात्कुतो दैवं प्रभवेत् इति।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एवं भाग्यपुरुषार्थयोः सम्बन्धे परस्परं विरुद्धवचनानि समुपलभ्यन्ते, कतरः पक्षो ज्यायानिति विचारे नीतिविद्भिरेतन्निर्णीतम्—

नालम्वते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे ।
शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते ।।
यथा ह्येकेन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत् ।
तथा पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्धयति ।।

वस्तुतः न केवलं दैवं, नापि केवलं पुरुषार्थः सर्वमेव साधयितुं प्रभवति, अतो यथैकः सत्कविः शब्दार्थयो र्द्वयमाश्रित्य सत्काव्यनिर्माणे प्रभवति तथैव भाग्यपुरुषार्थयो र्द्वयमेवाश्रित्य जनः कार्यसिद्धिं लभते नैव एकाश्रयेण ।

सत्यपि एवं विवादे परिहृतेऽपि, विधिरेव वलवान् न पुरुषार्थः । भाग्यमेव सर्वत्र फलति न च विद्या न च पौरुषम्, यद्विधिना हि ललाटपट्टलिखितं तत्प्रोज्झितुं कः क्षमः, नैव दैव मनादृत्य कोऽपि सिद्धिमवाप्नुयात् । भाग्यमेव मानवजीवनस्याधारशिला । भाग्यवशादेव वलिनोऽवलाः, धनिनो निर्धनाः, विद्वांसो बुद्धिमन्तो वा अकुशला मूढा वा गण्यन्ते । किं बहुना "दैवाधीनं जगत् सर्वम्" अतः सत्यमेवेदं प्रतिभाति—"विधिरहो वलवानिति मे मतिरिति ।

३३

कृधी न ऊर्ध्वं चरथाय जीवसे

उन्नतजीवनाभिलाषिणः प्राणिनः कर्मसु प्रवर्तन्ते । सर्वविधःसंसारकार्यव्यापारः जीवनरक्षणायैव प्रचलितोऽवलोक्यते । क्षुद्रात्क्षुद्रतमादपि कीटादारभ्यामानवलोकं जगज्जीवनरक्षणाय प्रयतमानमभिलक्ष्यते।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

क्लेशशतैरभिक्रान्तोऽपि जीवो जीवनस्य कृते उदरदरीमिमां पूरयितुं रात्रिन्दिवं विचेष्टमानो दृश्यते। यतो हि निसर्गादेव भवन्ति प्राणिनो जीवनाभिलाषिणः। परं प्रकृतिप्रदत्तान् भोजनाच्छादनादिजीवनोपयोगिनः पदार्थानधिगम्यापि मानवो न सन्तुष्टो भवति। केवलं प्राणधारणमात्रमेव न भवति तस्य जीवनलक्ष्यम्। स स्वजीवनमुन्नतिशीलमपि विधातुं नानाविधान् दुष्करान् यत्नानाचरति। स ऐहिकं यशः आमुष्मिकञ्चानन्दमधिगन्तुं यतते, अन्यान् च प्रेरयति उत्तरोत्तरमुन्नतिसाधनाय, अतएव स न केवलं 'जीवेम शरदः शतम्' अपि तु 'शतमदीनाः स्याम शरदः' इत्यप्यभिलषति। प्रार्थयते च जगदीश्वरम् न केवलं जीवनधारणाय अपितु उन्नतिशीलजीवनप्राप्तये। न स काकवत पशुवद् वा उदरभरणायैव जीवनमिच्छति, अपि तु तज्जीवनस्य लक्ष्यमस्ति, सदाचरणम्, परोपकरणम्, साहाय्यम्, परदुःखविघाताय दुःखसहनम् वेति।

वस्तुतो न तस्य जीवनं जीवनं यः केवलं जीवनधारणाय 'भोजनाच्छादनचिन्तापरो जीवति, जीवति तु स एव य ऐहिकामुष्मिकोन्नतिसाधनाय अन्येभ्यश्चैतदर्थं साहाय्यदानाय जीवति। यदि स्वोदरपूर्त्यर्थमेव मानवो जीवति किन्तेन जीवितेन। नगण्यस्तुच्छो जन्तुरपि जीवति परं किन्तस्य जीवितेन। पिपीलिकोऽपि रात्रिन्दिवं स्वोदरभरणार्थं यतते जीवति च। वस्तुतः स जातः येन जातेन याति देशः समुन्नतिम् अन्ये तूदरम्भरयो भुवि भारभूता एव विचरन्ति। एवम्भूतोन्नतजीवनोपलब्धये एवोपर्युक्तमन्त्रे प्रार्थितोऽस्ति जगदीश्वरः, येन स मानवाय सद्बुद्धिं, सद्गुणान्, बलं धनञ्च देयात्।

एभिरेवेशदत्तैर्बलबुद्धिविद्याचारसद्गुणादिभिः समन्विता एव जनाः स्वहस्ताभ्यामेव स्वोद्योगेनैव स्वजीविकामधिगन्तुं प्रभवन्ति अन्याँश्चैतदर्थं प्रेरयन्ति। "उत्तिष्ठत, जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत" इत्युपनिषद्वाक्यमेव भवति उदारचरितानां जनानां जीवनस्य लक्ष्यम्। न ते अलसा निरुद्यमिनः परान्नोपजीविनः परमुखापेक्षिणो भूत्वा जीवनं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नेतुमभिवाञ्छन्ति । भवन्त्येते सेवाव्रतधारिणः, परं न स्वोदरभरणाय अपि तु दीनाना मार्तानां त्राणाय तद्दुःखविघाताय वा । बलस्य बुद्धेः विद्यायाः कृते एतेषां जगदीशप्रार्थना नात्मसुखाय केवलमपि तु सर्व-कल्याणसाधनाय भवति, यदि प्रसन्नो जगदीश एतान् सद्गुणानेभ्यो ददाति तर्हि ते एतेषां सदुपयोगं कुर्वन्ति, ते अगाधापत्सागरादुन्नयन्ति-जनान्, अशिक्षितान् शिक्षितान्, दुर्गतान् सौभाग्यशालिनः, अभिमा-निनः निरभिमानाँश्च विदधति । सदा परहिते विहिताभियोगा एते स्वार्थं परित्यज्य परकार्यसाधनाय प्रयतन्ते । ते निश्चयतो जानन्ति यत्परकार्यसाधने स्वार्थसाधनन्तु स्वयमेव भवति, किमेतदर्थं व्यर्थमेव श्रमो विधातव्यः । अतस्ते प्रार्थयन्ते—

सर्वे कुशलिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥

३४

सद्विद्या यदि किं धनैः

विद्याया धनस्य च लोके सर्वातिगं महत्त्वं सर्व एवावगच्छन्ति, परं किं धनाधीना विद्या, विद्याधीनं वा धनमिति प्रश्नोऽद्यावधि विवाद-ग्रस्त एवास्ति । सन्ति कतिपये दृष्टान्ता ये धनोपरि विद्याया महत्त्वं स्थापयन्ति, अन्ये च विद्यापेक्षया धनस्य प्राधान्यं प्रमाणयन्ति ।

दृश्यते हि लोके यद् विद्यां बुद्धिञ्चाधिगम्यैव जना धनोपार्जनाय प्रभवन्ति, मूढा विद्याविहीना दीनाः परमुखापेक्षिण एव सन्ति । विद्यां विना धनं सुखं वा न लभ्यम् । विद्यावन्तो यत्र कुत्रापि यान्ति विद्यया धन मादरञ्चाप्नुवन्ति । "व्यापारे वसते लक्ष्मीः" इति सत्यम्, परमि-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यमपि लभ्यते विद्यावद्भिरेव न तु मूर्खैः । व्यापारेऽपि बुद्धेरावश्यकत्वम्, सा चेयं बुद्धिः विद्ययैव सम्वर्धते, व्यापारकुशलञ्च जनं विदधाति । बुद्धिस्तु निसर्गत एव अल्पज्ञेषु वालकेषु पशुषु पक्षिषु चापि वर्तते, परं बुद्धिसम्वर्धनशीलाया विद्याया अभावान्नते स्वोदरभरणादतिरिक्तं किमपि कर्तुं पारयन्ति । विद्यावन्त एव विनम्रा विनयशीलाः कार्यदक्षा भवन्ति, विनयेनैव ते योग्यतां यान्ति, योग्यत्वादेव धनं ततः सुखं लभन्ते, अतः सिद्धमेतत्, यद् विनयस्य, शीलस्य, सदाचारस्य, धनस्य, सुखस्य चापि मूलकारणं विद्यैव न तु धनम् ।

परमन्येषान्नीतिविदां मतमिदं यदर्थार्जने न किमप्यावश्यकत्वं विद्यायाः । एकाक्षरज्ञानशून्या अपि जनाः दृश्यन्ते धनिनः । सन्तु नाम वहवो जना विद्याविहीना अक्षरज्ञानरहिताः मूढा असभ्या असंस्कृता अर्धसभ्या वा परमिह श्रूयन्ते ते धनिनः ऐश्वर्यशालिनः सुखेन कालं यापयन्तः, अथ च विद्यावन्तः विद्वांसः दीना दरिद्राश्च । मूर्खा अपि ते धनिनः पूज्यन्ते लोकैः, न केवलं सामान्यजनैः, साधुभिः विद्वद्भिश्चापि । नैके विद्यावन्त ऐश्वर्यशालिना माश्रये जीवनकालं गमयन्तः तेषां निकृष्टसेवावृत्तिं कुर्वन्तः सेवोपलब्धान्नजीविनोऽवलोक्यन्ते लोकेऽद्यापि । अतो निर्विवादमेतद् यद् धनाधीना विद्या । यतो हि विद्यालभ्याः सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते । विद्यापि काञ्चनाश्रया, गुणा अपि काञ्चनाश्रया, जना अपि काञ्चनाश्रया जगदपि काञ्चनाश्रयमेव । अतो को गुणो विद्यायाः, कोलाभः किञ्च फलं विद्यया इति ।

कतरोऽत्रपक्षोऽवधार्यः निश्चयेनेति विचारे विद्यैव धना दुच्चतरा प्रतिभाति । अर्थानामर्जने दुःखं, रक्षणे च तेषां दुःखं, व्यये दुःखम्, अपगतेष्वपि तेषु दुःखमेवाधिगस्यते । वस्तुगत्या न सुखमर्थवतां रात्रौ दिवा वा । अतः परिहेया ईदृशा दुःखदायिनोऽर्थाः ।

किञ्चार्था स्तावदैहिकसुखसाधका एव, नार्थैरेभि रलौकिकं लोकोत्तरानन्दं मोक्षं वाधिगन्तुं पारयति लोकः । "एभि र्धनैः पञ्चपदी न दीयते" अवितथमिदं वचः । अर्थवन्तो हि मूर्खा आहारनिद्राभयमैथुनादिकमेव जीवनस्य साध्यं मन्यमाना विद्याभावात् संगीतसाहित्यकला-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विहीना भुवि भारभूता अर्थाभिमानिनो न मनुष्याख्याभाजोऽपि भवन्ति ।

धनवता माश्रये जीवनं यापयन्तो विद्यावन्तो वस्तुतो न विद्यावन्तो विद्वांसः, अपितु अर्थलोलुपाः शास्त्रभारभृतः गर्दभा एव । एत एव तथा-कथिता विद्यावन्तो वाग्देवीं नर्तकीमिव धनवतां द्वारि द्वारि नर्तयन्तो विचरन्ति, नैते विद्यावन्तोऽपि तूदरम्भरय एव, न ते बुधजनाख्या-पात्रम् । धनन्तु वाग्देवतासमतामपि कर्तुं न क्षमं ततोऽधिकन्तु कथं स्यात् ।

सन्तु नाम सर्वाण्यपि लौकिकानि वस्तूनि धनाश्रयवन्ति, परं दर्शनं विद्या कलादयो वा न धनलभ्याः । विद्यैव केवलं भुक्तिं, मुक्तिं, कीर्तिं, सद्गतिञ्च ददाति न धनम् । यदि धनिनः पूज्यन्ते तर्हि अर्थ-परैः, धनगृद्धैः; धूर्तैः, वञ्चकैः, पिशुनैश्चाटुकारिभिरेव, न साधुभिः विद्या-वद्भि र्वेति । अथापि धनिनस्ते पूज्यन्ते स्वदेशे एव, परं विद्यावन्तस्तु सद्भिः, सदाचारिभिः विद्वद्भिः स्वदेशे विदेशे चापि पूज्यन्ते । यथोच्यते :—

विद्वत्त्वं नृपत्वञ्च नैव तुल्यं कदाचन ।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ।।

३५

प्रायेण नरेन्द्रश्रीः सोत्साहैरेव भुज्यते

लोके प्रायः सर्व एव जना यशोऽभिरुचयः, ऐहिकसुखसाधनाभिला-षिणश्च भवन्ति । फलतः सर्व एव राज्यश्रियं श्रियं वा केवलं प्राप्तु मिच्छन्ति । परं सिद्धमेतद् यद् गुणशालिन एवेमामधिगन्तुं पारयन्ति

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नान्ये। धृतिक्षमादमानालस्याध्यवसायोत्साहादयो गुणा एव कार्यसिद्धिविधायकाः फलतो लक्ष्मीदायिनः सन्ति। धृत्युत्साहादीनेतान् गुणानुपेक्ष्य कोऽपि प्रार्थयिता लक्ष्मीन्नाप्नोति, यथा कथञ्चिल्लब्धापि न तदुपभोग्यतामियमुपयाति। गुणानुवर्तिनी विशेषतः शौर्योत्साहाश्रिता लक्ष्मी र्गुणवद्भिरेवावाप्यते। पूर्वोक्तेषु गुणेषु लक्ष्मीसाधने उत्साहो नाम प्राधान्येन गण्यते। उत्साहसम्पन्नं फलतो धनवन्तं जन मन्ये शौर्यादयो गुणाः स्वयमेवोपयान्ति। अतो धनाभिलाषिभिरवश्यमेवोत्साहसम्पन्नै र्भवितव्यम्। सत्यमिदमुच्यते यल्लक्ष्मीः सोत्साहैरेवोपभुज्यते।

उत्साहवतो वीरस्य पराक्रमशालिनो जनस्यैव कृते वसुन्धरायाः सर्वे दुर्लभा अपि भोगा भवन्ति। सोत्साहै र्वीरपुरुषै रेव वसुमतीयं लभ्यते, यथोच्यते 'वीरभोग्या वसुन्धरेति'। राज्यं राज्यसुखं वा तैरेवोपभुज्यते ये सोत्साहा निर्भयाः सन्तः समराग्रभूमौ सपत्नान् विजित्य राज्यमवाप्नुवन्ति। उत्साहमन्तरेण न धनाप्तिः सुखाप्तिर्वा जायते। सामान्यतो दृश्यते लोके यदङ्गीकृतं कार्यं, आत्मनैवारब्धं कार्यं वा ये खलु विघ्नशतैः प्रतिहन्यमाना अपि उत्साहमवलम्ब्य साधयन्ति त एव कार्यसाफल्यं तदनु लक्ष्मीञ्च लभन्ते। कस्यचिदपि महतस्तुच्छस्य वाकार्यस्य साधनाय उत्साहस्यावश्यकत्वमस्ति। स्वभावतो विघ्नास्तु कार्यसाधने आयान्त्येव, परं सोत्साहा एतानुपेक्ष्य न तावत् समारब्धात् कार्याद् विरमन्ति यावत्तस्यान्तं न गच्छन्ति। एतादृशाः सोत्साहा जना एव सज्जनेषु गण्यन्ते, यतो हि ते स्वोत्साहबलेनात्मकार्यन्तु साधयन्त्येव परानप्युपकुर्वन्ति।

दृश्यते लोके यत्सोत्साहानामपि जनानामापत्तिकाले ह्युपस्थिते उत्साहभङ्गो जायते, फलतस्ते कार्यं परित्यजन्ति, कथयन्ति च 'यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः इति' परं नैतत्समीचीनम्। आपत्तिकाल एवोत्साहस्य परीक्षा भवति, सामान्यावस्थायान्तु सर्व एवोत्साहवन्तस्तिष्ठन्ति, अतः परीक्षाकाले नोत्साहभङ्गो विधेयः।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

उत्साहवतां सर्वत्रैव गतिः, न किमपि दुष्प्राप्यं दुष्करं दुर्गमं वा भवत्युत्साहवताम् । अलसा उत्साहशून्याः कदाचिदपि कार्यसिद्धिं न पश्यन्ति, न लभन्ते ते ऐहिकान् विविधान् भोगान्, दुःखप्रायमेवैषां जीवनं भवति, तथोच्यते—

निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्याकुलात्मनः ।
सर्वार्था व्यवसीदन्ति व्यसनं चाधिगच्छति ।।

उत्साहः सर्वेषामेवावश्यको गुणः, ऐश्वर्यशालिनां राज्ञान्तु जीवनस्य मूलमेवायमुत्साहः । उत्साहवन्त एव राजानः महान्तो जना वा स्वराज्यं स्वजनाँश्च परित्रातुं क्षमाः न तु अलसाः । दुर्बला साधनहीना अपि सततं कार्यंनिरताः सोत्साहा जना दुष्करं बहुसाधनसाध्यमपि कार्यं कर्तुं समर्था भवन्ति । एकाकिना महाराजेन भगीरथेनाकाशाद् गंगा भुवमानीता । साधनविहीनेनापि रामेण सागरे सेतु र्वद्धः, विरथेनापि तेन असंख्यैः राक्षसैः सह दुर्जयो रावणो हतः । सोत्साहैः पञ्चभिरेव पाण्डवैः तुमुले महाभारताख्ये संगरेऽनेके शत्रवो निर्जिताः । उत्साहवलेनैव शिवराजेन परैः समाक्रान्तं स्वराष्ट्रं हिन्दुत्वञ्च रक्षितम् । महात्मना गान्धिमहोदयेन परहस्तगतं स्वराज्यं पुन र्लब्धम् । एवं सन्त्यनेके दृष्टान्ता उत्साहमहत्त्वं प्रख्यापयन्तो लोके । अतः सदैवोत्साहोऽवलम्बनीय इति । तथोच्यते—

उत्साहो बलवानत्र, नास्त्युत्साहात् परं वलम् ।
सोत्साहस्य हि लोकेषु न किञ्चिदपि दुर्लभम् ।।
उत्साहे वसते लक्ष्मीः, सोत्साहैरेव भुज्यते ।।

अन्यच्चः—"उत्साह सम्पन्नमदीर्घसूत्रं, क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम् ।
शूरं कृतज्ञं दृढसौहृदञ्च लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३६

वसन्तोत्सवः

भारतीयानामार्याणां सन्ति चत्वार्येव पर्वाणि श्रावणीविजया-दशमीदीपमालिकाहोलिकेत्याख्यया प्रसिद्धानि । सन्तीमानि ब्राह्मण-क्षत्रियवैश्यशूद्राणां कृते निर्मितानि वर्णाश्रममर्यादासंरक्षकैरार्यवर्यैः । नवीक्रियन्ते प्रतिवर्षमेभिरेवार्यादर्शाः । एषु होलिकेतिविख्यातो वस-न्तोत्सव एव प्राधान्येन गण्यते ।

उत्सवोऽयं समधिकरम्ये नवोद्भिन्नकिसलयवद्भिः लतापादपैर्मनो-हारिणि, मधुमधुरमञ्जुलमञ्जरीसरसैः रसालैः सुरभिते, मधुरमध्वा-स्वादमत्तानां मधुपानां मनोरमैर्मञ्जुगुञ्जितैः, कलकण्ठानां कोकिलानां-कलरवैः हृदयहारिणि, वसन्ते महतामोदेनानुष्ठीयते लोकैः । समये-ऽस्मिन् वनोपवानां सरसां क्षेत्राणाञ्च महनीया शोभा भवति । प्रभाते एकतः प्रसरति कमलादिकुसुमानामामोदः, अपरतश्च स्पर्शानुकूलः शीतलो वासन्तिककुसुमामोदमृदुमधुरगन्धो मलयानिलो मन्दं मन्द-मायाति । क्वचिद् दृश्यते हरितायमाना पक्वधान्यसंकुलाचला, क्वचिद्-विलसन्ति कुसुमाभरणभूषिताः पतत्पतङ्गपादनिक्षेपनम्रीभूता मधुर-मकरन्दामोदवता मरुतान्दोलिता लताश्च । अनुरागकारिणि चित्तोन्मा-दकारिणि च कालेऽस्मिन् न केवलं मनुजाः पशुपक्षिणोऽपि महतामो-देन अमन्दविलासेन च नृत्यन्ति । उपबनेषु सम्मिलिता जनाः संगीत-कमारभन्ते । एवमुत्सवोऽयं सर्वेषामाह्लादकरो भवति ।

अयमेव समयो नवान्नागमनस्यापि भवति, येन कृषकाणां गृहेषु महान् हर्षो जायते । अस्मिन्नेव काले होलिकादाहोऽपि भवति । एतद्-विषयेऽस्त्येका पौराणिकी कथा प्रचलिता यत् पुरा भगवद्भक्तं स्वपुत्रं प्रह्लादं भस्मीकर्तुकामः ईशलब्धवरप्रसादेन तृणीकृतजगत्त्रयशक्ति-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सारः निःसारः सावमर्शः अहम्मन्यो हिरण्यकशिपु दैत्यः स्वस्वसारं लब्धवरां होलिकेतिनाम्नीमादिष्टवान् । सा च निदेशानुसारं प्रह्लादं स्वाङ्कमारोप्य समुज्ज्वालिते प्रदीप्तानले निर्भया प्रविष्टा, परं महानलावलीढगात्रोऽपि प्रभुदत्तशक्तिः प्रह्लादो विहसन्निर्ययौ तस्मादनलात्, परं लब्धवरापि सा वराकी प्रतिकूलदैवात्तत्रैव तत्क्षणमेव भस्मावशेषा जाता इति । तदारभ्य वसन्तोत्सवस्यास्य होलिकादाह इति नाम्ना प्रचारोऽभवत् ।

अद्यत्वेऽपि जनाः पूर्वप्रथानुसारं स्वनगराद्वहि रेकस्मिन् प्रदेशे बहुकाष्ठपत्रादिसंचयं विधाय बालवृद्धजनसमन्विता महता हर्षेण गीतवाद्यादिकं कुर्वन्तोऽग्निं प्रज्ज्वालयन्ति । प्रज्ज्वलिते चाग्नौ देवतोद्देश्येन तैः नवान्नाहुतयः प्रक्षिप्यन्ते । क्रियामिमां जना नवान्नेष्टिं कथयन्ति । ततः सुधानुलिप्तेषु स्वस्वगृहेषु समेत्य वन्धुभिः सह मिष्ठान्नं पक्वान्नञ्च खादन्ति । द्वितीयेऽह्नि ते हर्षातिरेकेण परस्परं विविधान् वर्णकान् प्रक्षिपन्ति गायन्ति नृत्यन्ति वादयन्ति च नानाविधानि वाद्यानि च । तदनु परस्परं कण्ठमाश्लिष्य मिलन्ति, दूरीकुर्वन्ति च स्वमनोमालिन्यमद्यावधि वर्तमानं पवित्रतमेऽस्मिन्नुत्सवे । सर्वे वर्णा मध्यमाधमोत्तमा द्रव्यगुणकर्मजात्यादिकृतं भेदभावं विधूय उत्सवेऽस्मिन् मिलन्ति । इत्थमुत्सवोऽयं जनानां सौख्यप्रदः सुप्रसिद्धश्चास्ति ।

३७

महापुरुषचरितम्—बुद्धदेवः

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानि र्भवति भारत ।
अभ्युत्त्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इति गीतोक्तिदिशा निरपराधिजीवानां परित्राणाय विनाशाय च हिंसकानां दुष्कृतिं, दूरीकरणाय चानेकानि सामाजिकदूषणानि आनयनाय च जनान् सद्धर्मपथम्, समुत्थापनाय च सद्धर्मस्य, प्रेरणाय च जीवान् सहानुभूतिपराय दयापराय च कर्मणे, समुद्धरणाय च विविधक्लेशजर्जरीकृतमानवानां महाकारुणिका महात्मानो वसुन्धरायामस्याभाविर्भूयालङ्कुर्वन्तीमं मानवलोकम् । महापुरुषो महाकरुणामूर्तिः महात्मा बुद्धदेवोऽपि पशुवधबाहुल्ये यज्ञादिकर्मणि रूढिग्रस्तधर्मेऽस्मिन् जगतीतले नैकविधान् सामाजिकदोषानपाकर्तुं विधातुञ्चानेकान् सुधारान् समाजे, सत्यस्य, सदाचारस्य, त्यागस्य, मुक्तिमार्गस्य, अहिंसायाः समतायाः तपस्यायाश्च प्रचाराय शाक्यवंशमलङ्कुर्वन्नवततार । शुद्धोदनोऽभूदस्य जनको जननी च मायादेवी ।

वाल्यादेवायं गम्भीरस्वभावः सौम्यः समदर्शी चासीत् । राजोचित विभवैः समं समेधितोऽपि सम्वर्धितोऽपि सौभाग्यसुखेन शस्त्रास्त्रशिक्षापारङ्गतोऽपि समन्वितोऽपि विद्याबुद्धिकलादिभिः, भगवान् महाभाग्यवान् बुद्धदेवो न सांसारिकभोग्येषु प्रीतिमविन्दत । एवमाजन्मन उदासीनं निरीहञ्च स्वसुतं समीक्ष्य तज्जनकस्तं विविधेषु सर्वसौख्यसमन्वितेषु सांसारिकेषु विषयभोगेषून्मुखीकर्तुं सततं प्रयतमानोऽपि न साफल्यमध्यगच्छत् । राज्यविभवानुलिप्तचेताः शुद्धोदनस्तदा नेदमभिज्ञातु मपारयत्-यत् स्वसुखनिरभिलाषं जनहितधृतविग्रहं सविग्रहं धर्ममिवात्मज्ञं महात्मानं नाभिरमयन्ति राज्यवैभवसुखानि वराङ्गनाः पारिवारिकसम्बन्धाः सम्वन्धिनो वेति । मायामोहाच्छादितबुद्धिविकासः पौनःपुन्येनास्वाद्यमानेष्वपि तेष्वेवाभोगेष्वावद्धदृष्टिरयमेवमप्यवगन्तुं नाशकत यत् कालदशङ्गतं नरं कोऽपीश्वरादन्यो नावति, न जनको जननी न च सोदरो न तनयो न च भूरि बलं कुलम्वेति ।

पित्रादिभि र्वहुविधै र्यत्नै र्निवार्यमाणोऽपि भगवान् बुद्धदेव एकदानिशीथे निद्रावशङ्गताम्मनोऽभिरामां प्रियां पत्नीं नवनीतकोमलं विकसितमुखारविन्दं तनयं सर्वैहिकसुखसाधनीभूतं समृद्धं प्राज्यं राज्य-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ञ्चापहाय सर्वतः रक्षकैः रक्षितादपि प्रासादान्निरगात् । मुनिजन-मनोविस्मयकरं परमं तपस्तप्त्वा लब्ध्वा चास्मादभ्युदयनिःश्रेयससाधकं ज्ञानं बुद्धेत्याख्यामभजत् । ततश्च न केवल मात्मज्ञानमात्रेण परितृप्तः परितः परिभ्रमन्नयं सत्यस्य अहिंसायाः समतायाश्च प्रचारं कृतवान् । सत्याभिनिविष्टचेतसो महाकारुणिकस्यास्य महापुरुषस्याहिंसाप्रचार-प्रभाविता लोकास्तस्यानेके शिष्यास्तदनुयायिनो जाताः । नैके नरा नार्यश्च वाला वृद्धाश्च गृहस्थधर्ममुपेक्ष्य भिक्षावृत्ति मधारयन् । कियन्तो नृपतयः श्रेष्ठिनश्च बौद्धधर्मे दीक्षिता धनेन बलेन शरीरेण मनसा वाचा कर्मणा चास्य धर्मस्य साहाय्यं कुर्वन्तः प्रचारायास्य देशान्तरमपि गतवन्तः, इतीतिहासाभिज्ञाः सम्यगवगच्छन्ति । सम-भाववर्तमानस्य जातिवादाद्यवलेपरहितस्य धर्मस्यास्य न केवलं भारत-वर्ष एव अपितु लङ्काचीनजापानसिंहलेत्यादिदेशेष्वप्यस्य सम्यक् प्रचारोऽभवत् । धर्मेणानेन भारतीयः सनातनो ब्राह्मणधर्मः जीवित-संशयं प्रापितः ।

एवं भगवता बुद्धदेवेन पशुहिंसाविकृतं भारतोयधर्मस्य स्वरूपं संस्कृत्य नैके सामाजिकाः सुधारा विहिताः संस्थापिताश्च नैके संघारामाः । दूरीकृता च लोकानां धर्मेऽहम्मन्यता । बुद्धिसंगतेन अनेन बौद्धधर्मेण प्रभावितेन महाराजेन अशोकेनापि बौद्धधर्मप्रचारपूर्वकं युद्धा-हिंसाविभीषिकात्रस्तस्यास्य देशस्य बहुमुखी समुन्नतिः कृता । जनहितं विधित्सुनानेन नैके सुधाराः कृताः कारिताश्च । वहुतिथे काले गतेऽपि बौद्धधर्मसम्मत महिसाव्रतमाचरता सत्यव्रतञ्च पालयता महात्मना गान्धिमहोदयेन पुनरप्येकवारं भगवतो बुद्धदेवस्य सदुपदेशा नवीकृताः, अतएव दिवङ्गतोऽपि सोऽद्याप्यस्मन्मानसमन्दिरेषु सपर्यां लभते इति ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३८

भारतीयसंस्कृतौ नारीस्थानम्

सत्स्वपि परलोकाध्यात्मचिन्तनात्मसंयमादिष्वन्येषु वैशिष्ट्येषु भारतीयसंस्कृतौ मातृशक्तिसम्माननं नामापरं वैशिष्टचमस्ति । यदद्यत्वेऽपि भारतीयसंस्कृते र्महत्त्व मितरदेशवासिभि रपि स्वीक्रियते, एतस्य प्रमुखं कारणं मातृशक्तिसम्माननमेव प्रतिभाति । मातृशक्तिश्चेयमासी त्सर्वदैव सर्वत्रैव सर्वविधसम्प्रदायानुगामिभि र्भारतीयैः सम्पूजिता-समादृतापि । अथ भारतीयेतिहासे मातृशक्तिरियं महाशक्तिरूपेण सदैव प्रतिष्ठामभजत् । संस्कृतसाहित्ये देवीभागवतादावस्या मातृशक्ते रसाधारणं वैशिष्टचमस्ति वर्णितम् । "स्त्रियः समस्तास्तव देवि भेदाः" इत्युक्तिदृशा सर्वा एव स्त्रियस्तस्या एव आद्याया महामायायाः स्वरूपेण स्थिताः समादरभाजनं जाताः । वेदकाले तदुत्तरकाले चानेका वेदवेदाङ्गपारंङ्गताः स्त्रियो बभूबुः । गार्गी मपाला मात्रेयीं वा के न जानन्ति । यासां ज्ञानगरिम्णा महर्षयोऽपि चकिता आसन् । काश्चिदेता मन्त्रकर्त्र्योऽप्यासन् । वेदाङ्गेषूपलभ्यते यत्र तत्रासां ज्ञानगौरवम् ।

आस्तां तावत्प्राचीनानां नैष्ठिकीनां ब्रह्मचारिणीनां स्वनामधन्यानां शास्त्रपारङ्गतानां मानुषीणामपि देवीनां वार्ता, मध्यकालेऽपि जाता एतादृश्योऽनेका विदुष्यो यासां विद्याबुद्धिवलेन नैके विद्वांसः पराजितास्तासां विद्यावलं स्वीचक्रुः । जानीमो वयं परमविदुषीं श्रीमण्डनमिश्रधर्मपत्नीं भारतींदेवीं यथा सह श्रीशंकराचार्यस्यापि शास्त्रार्थोऽभवत् । अद्यत्वेऽपि सन्ति अनेकाः परमविदुष्यो विविधक्षेत्रेषु ।

न केवलं विद्याक्षेत्रे विविधेष्वन्येषु क्षेत्रेष्वप्यस्ति तासामनन्यसामान्यं महत्त्वम् । के न जानन्ति भारतीया युद्धकलाविशारदा वीराङ्गनाः । समराग्रभूमावेताः शस्त्रास्त्रसुसज्जिता महावलशालिभिः प्रति-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

भटैः सह युद्धं कुर्वन्त्यो विजयश्चाप्नुवन् । ललितकलाक्षेत्रे त्वेता एव विशिष्यन्ते । किमेता न जानन्ति, किन्न कर्तुं प्रभवन्ति, किमाभि र्न कृतम्, अथ च किन्न कर्तुं मेताः प्रभविष्यन्ति । न ता विद्याः, न ताः कथाः, न ते गुणाः, यत्रासां न केवलं प्रवेशोऽपि त्वधिकारोऽपि नास्ति ।

कथमेताः सर्वगुणसम्पन्नाः सर्वकलानिपुणाः सर्वविद्यापारङ्गता बभूवुरिति विचारे इदमेवोच्यते यद् भारतीयसंस्कृतौ दत्तमासीदासां कृते पूज्यस्थानम् । न किमपि निषिद्धं परिवर्जितं वासीदासां कृते, सर्वविधेषु धार्मिककृत्येषु सामाजिकादानप्रदानात्मकेषु कार्येषु, गार्हस्थ्यविधिषु, तथा चैवम्भूतेष्वन्येषु मानवजीवनोपयोगिकृत्येषु वापि । भारतीयसंस्कृतिजुषां मानवानां नारीजातिसमादरभावनयानयैवेमाः सर्वतो भावेन कुशलाः सर्वसाधनक्षमाः कर्तव्याकर्तव्यज्ञानविशिष्टाः सर्वविद्याविभूषिताः कलाभिज्ञाः प्रवीणाश्चाभूवन् । भारतीयसंस्कृतेरेवैतादृक् महत्त्वं यत्र नारीणां कृते एतादृशमुच्च पदं दीयते, नैतन्नेतरासु संस्कृतिषु परिलक्ष्यते । एतस्मादेवकारणान्न कदापि भारते स्त्रीणां समानाधिकार प्रश्नमादाय विवादोऽभवत् । स्मृतिकारैः प्रथममेव तासां कृते विशेषाधिकारो निर्दिष्टः, फलतोऽद्यापि न कोऽपि गार्हस्थ्यजीवनविधिः नारीमन्तरेण सिद्ध्यति । भारतीयसंस्कृतावासा मेतादृशेनैव महत्त्वेन "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" ।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ।
पितृभि र्भ्रातृभिश्चैव पतिभि र्देवरैस्तथा ॥
पूज्या भूषयितव्याश्च वहुकल्याणमीप्सुभिः ।
स्त्रियान्तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलम् ।
तस्यान्त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते ॥

इत्यादीनि नारीमहत्त्वप्रख्यापनपराणि स्मृतिवचनान्यद्याप्यनुगम्यन्ते । नीतिकृद्भिरप्यभ्युगतः 'मातृवत्परदारेषु' इति सिद्धान्तो लोकै र्यथावद् व्यवह्रियते । अद्यापि न केवलं शिक्षिताः पामरा अपि जनाः परस्त्रीषु 'मातः, भगिनि, पुत्रि, इत्यादि शब्दान् प्रयुञ्जाना देशे-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ऽस्मिन् श्रूयन्ते । परपरिग्रहसंश्लेषेण महत्पातकं भवतीति सर्वैरेव स्वीक्रियते ।

भारतवर्षे रामायणमहाभारतयोरेतयो र्द्वयो ग्रंन्थरत्नयोः सर्वाधिकः प्रचारो दृश्यते । सत्स्वप्यंन्येषु कारणेषु मुख्यं कारण मिदमेव प्रतीयते यदेतयो ग्रंन्थयो र्निर्मितिरेव भारतीयनारीमहत्त्वप्रख्यापनायैवासीत् । रामायणे भगवत्याः सीतादेव्याः महाभारते द्रौपद्याश्चापमानपरिमार्जनार्थमेवैतयो र्निमाणमभूत् नात्र सन्देहः । स्त्रीजातेरपमानप्रक्षालनार्थमेव महाभारताख्यो महान् संग्रामोऽभवत्, रामायणकृतोऽप्येतदेवाभिमतमासीत् । यतो हि भारतीयसंस्कृतौ सदैव स्त्रियः पूज्याः समादरणीयाश्चासन्, अतएव तासां सम्मानरक्षणार्थमनेके घोरसंग्रामा वभूवुः । नारीजातिसम्मानरक्षायां भारतीयैः वीरैः स्वप्राणाः सुखमुत्सृष्टाः परं न कदापि नारीसम्मानरक्षणाद् विमुखा जाताः । अद्यापि प्रवृत्तिरेषा संलक्ष्यते ।

अस्तु नामेतरासु संस्कृतिषु, यथा पश्यामो बयमन्यदेशेषु, नारीणां समानाधिकारविषयको विवादः, दीयेत न वा दीयेत ताभ्यः समानोऽप्यधिकारोऽयं, परं भारतीयसंस्कृतौ तु न केवलं समानाधिकारः अपि तु विशेषाधिकारः पूज्याधिकारो वा नारीणां कृते प्रथममेव शास्त्रकृद्भिरेव निर्दिष्टो विद्यते । एतेन सिद्धयति यद् भारतीयसंस्कृतौ नारीणां महत्त्वपूर्णमुच्चस्थानमासीत्, मध्यकाले वैदेशिकप्रभावेण यद्यप्यस्य ह्रासो दृश्यते परमद्यत्वे स्वतन्त्रभारते नार्यः समादरदृशावलोक्यन्ते पूज्यन्ते उन्नीयन्ते सर्वक्षेत्रेष्वपीति ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

३९

आचारः प्रथमो धर्मः

सर्वविधेषु मानवीयकर्तव्येषु आचार एव प्रमुखं स्थान माधत्ते। आचारपदेनात्र सदाचारः सदाचरणं वा गृह्यते, सदाचार एव उत्तमोत्तमकर्तव्येषु प्रथमो गण्यते। यतो ह्यस्त्यमाचारः प्रथमः, अत एवाचारस्य शिक्षा प्रथमतः, वाल्यादेव दीयते। बालकस्य परिशुद्धान्तः करणेऽयमाचारः, अन्येषां लौकिकानां भावानां समुद्गमनात्पूर्वमेव स्थानं लभेत, एतदर्थं बाल्यकालादेवाचारस्य शिक्षा प्रथमं पितृभ्यां गृहे, तदनु विद्यालयेषु गुरुभि र्दीयते।

यतो हि बालका एव कालान्तरे राष्ट्रसंरक्षकाः समुन्नायकाश्च भविष्यन्ति, अतस्तेषां कृते सदाचारशिक्षाया आवश्यकत्वं सर्वैरपि स्वीक्रियते। विश्वस्मिन्नस्मिन्नद्यावधि ये ये महापुरुषाः महान्तः, देशभक्ताः, राजनीतिविशारदा, विद्याबुद्धिवलान्विताः, साहित्यकलाभिज्ञाः, परमोच्चपदाभिषिक्ता, मान्याः श्रद्धेयाश्चाभूवन्, ते सर्वे बाल्यादेव समुपलब्धसदाचारशिक्षाप्रभावेणैवैतादृशः आसन्। बाल्यकाल एव सदाचारस्य शिक्षायै समुचितः समयः। निजापरभावशून्यस्य अनास्वादितविषयरसस्य परिशुद्धान्तःकरणस्य बालकस्य विगतविकारे चेतसि सुखं विशति शुद्धे हि दर्पणतले सुलभावकाशा छायेव आचारोपदेशः। अतएव प्रायः सर्वेषु विद्यालयेषु अध्ययनारम्भात् पूर्वमेव बालकानां कृते सदाचारशिक्षाप्रबन्धो भवति। अत्रत्यशिक्षाप्रभावस्तन्मनः सु यावज्जीवनं तिष्ठति।

सदाचारशिक्षां विना न सम्भवति चरित्रनिर्माणं, तच्चान्तरेण न कोऽपि केष्वपि विषयेषु समुन्नतिशीलः प्रशंसनीयः समादरणीयो वा भवितुमर्हति। यदि लोके विद्याविहीनोऽपि दुर्गतोऽपि जनः समाद्रियते, तर्हि चरित्रप्रभावादेव। सदाचारिणः चरित्रशालिन एव संसारे विद्यां

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

कलां धनं शक्तिमारोग्यं समुन्नतिपथं लभन्ते न दुराचारिणः दुर्वृत्ता दुर्गताश्च कदापि लोके। अतएव आदित एव बालकानां चरित्रनिर्माणे विश्रुता विद्वांसः राजनीतिज्ञा धार्मिकाश्चैतदर्थं प्रयतमाना दृश्यन्ते।

सदाचारोऽयं मानसिकः कायिकश्चेति द्विविधो भवति। प्रथमस्तु हृत्स्थ एव जनं सत्कर्मप्रवृत्तये प्रेरयति, निर्दिशति च तं लोकाराधनाय सर्वजनहितकरणाय च। कायिकाचारश्च वाह्यो भवति। अस्याचारस्य पालयिता नरः यं कमपि रुग्णं व्याधिग्रस्तं पश्यति तम् तमेव स्वहस्ताभ्यां सेवते, भोजनाच्छादनादिकञ्च तस्मै प्रदाय आत्मानं सुखिनं मन्यते। सदाचारस्य सम्बन्धे मनुस्मृतिवचनमिदं सत्यम्—

आचाराल्लभते ह्यायु राचारा दीप्सिताः प्रजाः।
आचाराद्धनं मक्षय्य माचारो हन्त्यलक्षणम्॥

आचारवतः पुरुषस्य यथा प्रशंसा श्रूयते तथैव दुराचारिणो निन्दा। दुराचारिणं पुरुषं वेदा अपि न पुनन्ति; यथोच्यते—आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः। वस्तुत आचारहीनानां जनानामुद्धरणाय वेदेष्वपि नास्ति विधानम्। आचारहीनानान्तु कृते न यशः स्वर्गः नापि सुखम्। अतो यत्कर्म अकीर्तिकर मस्वर्ग्यं वा भवेत् न तत्समाचरेत्, यथोच्यते—

अयशः प्राप्यते येन येन चापगति र्भवेत्।
स्वर्गाच्च भ्रश्यते येन, न तत्कर्म समाचरेत्॥

४०

न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः

धैर्यधना न्यायपरायणा जना न कदापि प्रच्युता भवन्ति न्याय्यादङ्गीकृतात् स्वकर्तव्यात्। आपतन्तु नाम विविधानि प्रलोभनशतानि न्याय्यकार्यसाधनमार्गे परं सज्जना न स्तोकमपि विचलिता भवन्ति,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न ते तावद् विरमन्ति यावन्न कार्यस्यान्तं गच्छन्ति। वस्तुतः धीरा दृढनिश्चया अचञ्चलाः स्थिरमानसास्तु त एव ये स्वार्थपङ्कपिच्छिले विविधाद्भुताकर्षणगर्तसहस्रसंकुलेऽपि जीवनाध्वनि संचरमाणा न स्तोकमपि प्रविचलन्ति; बहुविधानां मनोविकारहेतुभूतानां लौकिकानन्ददायिनां पदार्थानां समक्षमपि नह्येतेषां धैर्यधनानां स्थिराणि चेतांसि विकृतिमुपयान्ति, अपि तु समस्तानेवैतान् मनोविकारहेतूननायासेनैवापनीय न्याय्यपरमेव कार्यं विदधति। यदि जनाः सूक्तिमिमां स्मारं स्मारं परमार्थतत्त्वञ्चास्य ध्यायं ध्यायं मनसि स्वार्थफणिफूत्कृतिभयावहेऽपि, तृष्णाकण्टकाकीर्णेऽपि लोभगर्तशतनिम्नोन्नतेऽपि मार्गे गच्छेयुः तर्हि न पदानि तेषां विषमीभविष्यन्ति। अङ्गीकृतार्थसम्पादनस्थिरबुद्धयो धैर्यशालिनो मनस्तोषकारिणि सुखे हृदयावसादजनके दुःखे चैकरसास्तिष्ठन्ति, न तेषां चित्तं चाञ्चल्यं याति, इष्टेऽनिष्टे वा वस्तुनि। नेमे धैर्यधनाः सम्पत्तिभिराकृष्यन्ते, न विपत्तिभिरभिभूयन्ते, न वन्धुजनस्नेहेनावध्यन्ते, न राज्यसुखलोभेन विकृष्यन्ते, सदैवैकरुपास्तिष्ठन्ति। सूर्यस्ताम्र एवोदेति ताम्रवर्ण एवास्तं याति न कदापि संसृते दीर्घाध्वानमुल्लंघयन्नपि विकृतिं याति, धैर्यधनानां महतां सज्जनामप्येतादृश एव स्वभावो भवति। नैते धीरास्तावद् विरमन्ति यावत्परम्पराप्राप्तमपि शिष्टजनानुमोदितमपि युक्तितः प्रमाणितमपि, कठिनात् कठिनमपि कार्यं कार्यरूपतां न समानयन्ति, कार्यसाधनमार्गे मृत्युमपि समीक्ष्य न विभ्यति, न विदधति कार्यविधौ संकल्पान् विकल्पान् निश्चयान् उतानिश्चयान् संशयान् वा। नापि कार्यसाधनपरास्ते मानं प्रतिष्ठां प्रशंसां वा नुचिन्तयन्ति, नापमान मुपहास्यतामधिक्षेपं वा।

सूक्तेरस्याः परिपुष्टये रामस्य जीवनमेवास्ति निदर्शनम्। धर्ममर्यादासंस्थापनावतारो मर्यादापुरुषोत्तमो भगवान् रामचन्द्रो यदा समुपास्यचरणकमलस्य सत्यप्रियस्य पितुश्चतुर्दशवर्षाणि यावदधिवनं स्थातुमादेशं विमातृमुखारविन्दाच्छ्रुतवान् तदास्य मुखारविन्दस्योपरि नेषदपि वैवर्ण्यं मालिन्यं वा विलोकयितृविलोचनपथमवातरत्। स

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पितुरादेशश्रवणसमकालमेव सर्वसुखसाधनीभूतं राज्यसौभाग्यं तृणवत्परित्यज्य स्मितविकसितवदनकमलो युवराजोचितकौशेयवस्त्राणि सुवर्णं स्वर्णमुकुटञ्चापहाय त्वरितमेव कौपीनं जटाभारञ्च विभ्राणो महता हर्षेणाविष्टो वनगमनोन्मुखो भूत्वा तादृशं निदर्शनमुपस्थापितवान् यस्योपमा मानवजातीतिहासे नोपलभ्यते। पुनरपि परमप्रियेणश्रद्धालुना भरतेन राज्यग्रहणाय प्रार्थितोऽपि न्याय्यात् पथः पदमपि न विचलितोऽभवत्। प्रकृतिषु सीताचारित्र्यमधिकृत्य प्रचलन्तीं जनश्रुतिमाकर्ण्य लोकाराधनमेव जीवनस्य परमं लक्ष्यं मन्यमानो धीराग्रणीः ईप्सितार्थस्थिरमानसो भगवान् रामः प्राणेभ्योऽपि गरीयसीं-प्रेयसीं सीतादेवीं हिंसव्याघ्रादिभयावहजीवसंकुले निर्जनवने गर्भभारालसामपि सर्वथैव नाथवतीमपि अनाथवतीभिव परित्यजन् न विषादमाययौ। समृद्धं साम्राज्यं ब्राह्मणसाद् विधायापि तद्दक्षिणानिमित्तायात्मानं साम्राज्ञीं सपुत्रां प्रियां पत्नीञ्च चाण्डालहस्ते विक्रयता तत्सेवां कुर्वता महाराजेन हरिश्चन्द्रेण अविचलितमनसा न्याय्यपथानुसरणस्य यादृशं निदर्शनमुपस्थापितं न तादृगुपलभ्यते क्वचिन्मानवेतिवृत्ते।

आस्तां तावन्महापुरुषाणामेतेषां विस्मृतिगर्भङ्गता एषा वार्ता, सर्वे वयं जानीमो हिन्दुकुलकमलदिवाकरं वीरत्वावतारं धैर्यधुरीणं प्रपापशालिनं राणाप्रताप महोदयं भारतीयसंस्कृतिसंरक्षकं शौर्यशालिनं शिवराजं वा, किं किं न कृतं शत्रुभिरेतौ पराजेतुं राज्यसम्मानसम्पदादिभि र्विलोभयितुं हिन्दुसंस्कृतिसभ्यताधर्मोद्धरणपथः प्रविचालयितुञ्च, परमेतौ न्याय्याद् धर्मादनपेतात् पथः स्तोकमपि न विचलिता वभूताम्। दिशानया परीक्ष्यमाणा सूक्ति रियं वस्तुतो लोभमोहमायामात्सर्यस्वार्थपङ्कपूर्णे मानवजीवनाध्वनि सञ्चरमाणस्य मर्त्यस्य कृते परमोपयोगिनीति नात्र सन्देहलवोऽपीति।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

४१

वाग्भूषणं भूषणम्

सर्व एवाभिलषन्ति भूषणम्, येन विभूषितास्ते समादरं समाप्नुयुः। परं वस्तुतः किमस्ति भूषणमिति सर्वे नावगच्छन्ति, केचित्तु स्वर्णनिर्मितानि केयूरकुण्डलादीन्येवाभूषणानि मन्यन्ते, केचित्तु सुन्दराणि वस्त्राण्येव शरीरशोभाकारीणि भूषणा न्यवधारयन्ति, अन्ये धनवलमेव मनुष्याणां सर्वसुखकरत्वादाभूषणं मत्वा धनोपार्जनाय सततं प्रयत्नशीला दृश्यन्ते, अन्ये विद्यावलमेव परमं भूषणं मन्यमाना अहर्दिवं तदुपार्जनाय प्रयतमाना अवलोक्यन्ते, अपरे तु शारीरिकं सौन्दर्यमेवा भूषणं गणयन्ति अतस्ते सौन्दर्यसाधनीभूतानि विविधानि वस्तुजातानि संगृह्य तदुपयोगेन शरीरशोभां वर्धयन्ति। परं नैतत् सर्वं भूषणं, भूषणन्तु एका वागेव। वाग्भूषणेनैव विभूषिता विद्वांस आदरास्पदं भवन्ति। वाग्भूषणमन्तरेण विद्याविभूषिता भूत्वापि नैव जनाः समादरास्पदं भवन्ति। स्वर्णमयान् केयूरान् धारयन्तः चन्द्रोज्ज्वलान् हारान् परिदधाना अपि धनिनो न विद्वत्समाजे वाग्भूषणं विना विराजन्ते। एवमेव सुरभितजलस्नानेन अनुलेपनेन कुसुमैरलंकृतमूर्धजैः सुवस्त्रैश्चापि समलंकृताः सौन्दर्यशालिनोऽपि युवानः वाग्भूषणमन्तरेण नहि सर्वत्र आद्रियन्ते। यतो हि नैतानि वस्तूनि शोभाकारीणि, शोभाकारित्वेकं वाग्भूषणमेव। वाणी एवैका जनं समलंकरोति यद्यस्ति सा परिनिष्ठिता सुपरिष्कृता संस्कारयुक्ता दोषविवर्जिता सुस्पष्टं समुच्चारिता।

वस्तुतो वाणी तु सर्वेष्वेव प्राणिषु भवत्येव परं नह्येतादृशी सामान्या वाणी भूषणपदार्हा भवति। सैव वाणी भूषणाख्ययाख्यायते या च भवति संस्कारविशिष्टा सुसंस्कृता, अतो विदुषां विद्यावतां सज्जनानामेव वाणी एतादृशी जायते। भाषणेनैव विदुषां मूढानाञ्च भेदः प्रत्यक्षीक्रियते, यावद् विद्वान् मूढो वा न भासते को भेदः स्याद् द्वयोर-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नयोः। काकानां कोकिलानाञ्च भवति भेदकं भाषणमेव । अतः भाषणेन वाक्प्रयोगेनैव सज्जनदुर्जनयो र्मध्ये भेदोऽवधार्य्यते, यथोच्यते- "मूढोऽपि शोभते तावद् यावत् किञ्चिन्न भासते ।"

एवं निश्चीयते यद् भूषणपदार्हया वाण्यावश्यमेव संस्कारसमन्वितया भवितव्यम् । परं संस्कृतापि वाणी माधुर्य्येण सत्येन च विना न भजते विभूषणाख्याम्, यया वाचा न साध्यते परस्योपकृतिः परस्य हृदयानन्दो वा न सा भवति भूषणपदार्हा "अत एवोच्यते सत्यं प्रियहितं वचः ।" सूनृतवाक्प्रयोगेण न केवलं मनुजाः पशुपक्षिणोऽपि वशजाः भवन्ति, सर्वे एव तस्य सुहृदो जायन्ते । शत्रवोऽपि दुर्जना अपि वशमानीयन्ते प्रियवचसा । अत एवाह नीतिनिष्णातो भर्तृहरिः— वाग्भूषणं भूषणम् इति ।

४२

दीपमालिका

देशेऽस्मिन् प्रचलितेषु सर्वेषु पर्वसु दीपमालिका दीपपर्व वा सर्वोत्कृष्टं महत्त्वमातनोति । दीपमालिकोत्सवोऽयं प्रतिवर्षं कार्तिककृष्णामायां महता हर्षेण मान्यते । यतो ह्युत्सवदिनेऽस्मिन् रात्रौ सर्वत्र गृहाभ्यन्तरे गृहद्वारि च पङ्क्तिबद्धा अविरलाः दीपमालाः प्रज्ज्वाल्यन्ते, अत एवोत्सवोऽयं दीपमालिकेत्याख्यया विख्यातिमाजगाम । भारतवर्षस्य विविधेषु प्रदेशेषु सर्वत्र विशिष्टसमारोहेणामान्यते ।

उत्सवस्यास्य विषये किम्वदन्तीयं प्रचलिता वर्तते यदस्मिन्नेव दिवसे मर्यादापुरुषोत्तमो भगवान् रामचन्द्रः रावणादिरक्षांसि निहत्य सीतादेव्या सह अयोध्यां प्रत्यागतः, तद्दर्शनोपजातहर्षै रतिप्रसन्नहृदयै-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

रयोध्यावासिभिः प्रमुदितैः सम्मार्जितगृहराजमार्गरथ्यादिभिः सुवस्त्रालंकारधारिभि र्जनैः स्थाने स्थाने सर्वत्र पंक्तिवद्धानि सघनानि दीपकानि प्रज्ज्वालितानि । विप्रवालयाचकेभ्यश्च विविधानि पक्वान्नानि-मिष्ठान्नानि च प्रदत्तानि, नृत्यगीतादीनि च कृतानि । तद्दिनादारभ्य देशेऽस्मिन्नुत्सवस्यास्य प्रचारोऽभवत् । एतदतिरिक्त दीपमालिकाया अन्यदपि आध्यात्मिकं स्वरूपमभिधीयते शास्त्रज्ञै र्जनैः, यद् यदा रावणरूपं मानवहृत्स्थं पापानाचारपाखण्डादिकमवधूय रामरुपो धर्मः मानवमानसमन्दिरं प्रविशति तदा मानवानां स्वान्तःकरणरूपाणि दीपकानि प्रज्ज्वलन्ति, तत्प्रकाशेन अज्ञानान्धकारो नश्यति, फलतः साधवः स्वेष्टिसाधनपरा भवन्तीति ।

उत्सवस्यास्य दिवसे रात्रिकाले प्रायः मृण्मयीं लक्ष्मीमूर्ति च जनाः पूजयन्ति । दीपप्रज्ज्वालनादनन्तरं, यदा बालका बालिकाश्च प्रतिगृहं मिष्ठान्नादिदानादानपराः क्रीडापरा नृत्यगीतादिनिरता भवन्ति तदा वयस्का वृद्धाश्च जना महत्या श्रद्धया लक्ष्मीपूजनं कुर्वन्ति । एतद्विषयेऽपि जनश्रुतिरेका श्रूयते, यदस्मिन्नेव दिने लक्ष्मीः या चासीद् विविधविवुधैः विवुधस्त्रीभिश्च साकं वन्दीकृता बलिना बलिना बन्धनागारे वामनरूपधारिणा हरिणा मोचिता । एवं बन्धनान्मुक्ता लक्ष्मीरस्माकं गृहे एव समाविशतु नान्यत्र गच्छतु एतदर्थमेव जनैः लक्ष्मीपूजनं क्रियते ।

यद्यप्युत्सवोऽयं महता समारोहेण सर्वजातिभिः सहर्षं विधीयते तथापि विशेषतो वैश्यानामेवायमुत्सवः कथ्यते । अद्यैव व्यापारिणो वैश्या नूतनामायव्ययवाहिकामारभन्ते तथा च वैश्यानां वर्षाकाले-निरुद्धं वाणिज्यमस्मादेव दिवसात्पुनरारभ्यते ।

उत्सवस्यास्य लाभदृशा सन्त्यनेके लाभाः । उत्सवोऽयं रामचरितस्यादर्शं स्मारयति, गृहरथ्यादीनां मलापनयनेन सहैव लोकहृदयगतं दुःखं खेदं पारस्परिक मनोमालिन्यञ्चापनयति । वर्षर्तु जातानामनेकरोगाणां कीटाणवो मशकादयश्च प्रज्ज्वालितदीप ज्योतिषा विनश्यन्ति । स्वच्छे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रकाशमये गृहे लक्ष्मीः स्वयमेवायाति, येन जनाः सम्पन्नाः सुखिनश्च जायन्ते ।

अस्मिन् दिने जना द्यूतक्रीडामपि कुर्वन्ति, यद्यपि नास्ति कुत्रापि विधानमस्य दुष्कर्मणः, अस्तीदं सर्वत्रैव निन्द्यम्, परं दुर्निवार्योऽयं दोषो जनानाम् । वस्तुतः कलङ्कोऽयमस्योत्सवस्य । येन केनापि प्रकारेण दोषोऽयमवश्यं दूरीकरणीयोऽस्माभिरिति ।

४३

मम सुप्रियं पुस्तकम् (गीता)

श्रीमद्भगवद्गीताऽस्ति मम सुप्रियं पुस्तकम् । महाभारतमूला गीतेयं दीपस्तम्भ इव समस्तं भुवनमण्डलं प्रकाशयति । परं किमस्ति गीताया वास्तविकं स्वरूपं कश्चास्याः प्रतिपाद्यो विषय इति मीमांसायामित्येव तावत् संक्षेपतोऽवधारणीयम्, यन्महाभारतीययुद्धक्षेत्रे सेनयोरुभयो र्मध्ये समवस्थितयो र्वासुदेवार्जुनयोः सम्वादव्याजेन सांसारिकसंघर्षमयस्य मानवजीवनस्य क्षेत्रे दुःखत्रयस्याभिघाताय सततमुद्योगपरं प्रत्येकमानवमुद्दिश्यैव सर्वजनहिताय महाकारुणिकेन भगवता श्रीकृष्णेन समुपदिष्टस्य कर्तव्यपथस्योपदेश एव गीतायाः परमोऽभिप्रायः । नह्यत्र कस्यापि धर्मविशेषस्य सम्प्रदायस्य प्रतिपादनं मण्डनं खण्डनं तिरस्कारो वा विधीयते । गीता हि मानवजीवनोपयोगिनः सत्कर्मविधानविषयकस्य सार्वजननीनस्य मौलिकसत्यस्य प्रतिपादकं शास्त्रम् । अतएव न केवल मार्यधर्मावलम्बिनामपि तु समस्तभूमण्डलनिवासिमानवलोकस्य कल्याणविधात्रीयं गीता सार्वकालिकं सार्वदैशिकञ्च महत्त्वमावहति । इयं हि विविधमार्गावलम्बिनां तत्तत्सम्प्र-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दायजुषां जनानां धार्मिकप्रवृत्तीरालोचयन्ती, सत्यं त्रिकालावाधितं मौलिकमादर्शं प्रदर्शयन्ती, उपशिक्षयन्ती कर्मशास्त्रम्, उपवर्णयन्ती अनेकविधान् नीतिमार्गान्, विनिर्णयन्ती च कर्तव्याकर्तव्यपथम्, मानवलोकं भक्तिज्ञानवैराग्यादिविशिष्टगुणानुपदिशति। यतो हीयं, सर्वधर्मकर्मणां वैज्ञानिकदृशावलोचने परीक्षणे च प्रवृत्ता, दुष्ट प्रवृत्तीनां हानिकराद् दुष्प्रभावादार्यदेशमार्यं जातिञ्च त्रातुं प्रवृत्ता सर्वशास्त्रमयी सर्वज्ञानप्रयोजिका धर्ममयी सर्वतीर्थमयी कल्याणमयी चेयं गीता धर्मशास्त्राणामपि धर्मशास्त्रमस्तीति नात्र सन्देहावसरः—यथोच्यतेऽभियुक्तैः—

तस्माद् धर्ममयी गीता सर्वज्ञानप्रयोजिका।
सर्वशास्त्रमयी यस्मात्तस्माद् गीता विशिष्यते॥
गीतागीतं न यज्ज्ञानं तद् विद्धयासुरसम्मतम्।
तन्मोघं धर्मरहितं वेदवेदान्तगर्हितम्॥

उपर्युक्ताद् गीताया धार्मिकवैशिष्टयादतिरिक्तं तस्या व्यावहारिक स्वरूपमप्यस्ति। भक्तिज्ञानवैराग्यपराङ्मुखै लौकिककर्मासक्तचित्तैः सामान्यजनैरस्या व्यवहारपक्षः समाश्रयणीयः। नहि गीता ज्ञानजुषां दार्शनिकानामेव शास्त्रम्, भगवद्भक्तिपरायणानामेव भक्तियोगप्रतिपादकं शास्त्रम्, नापि संसारसागरतितीर्षावतां वैराग्यजुषां तपस्विनां योगिनामेव योगशास्त्रम्, अपित्वस्यामनासक्तकर्मयोगस्यापि विधानं निर्दिष्टमस्ति। अद्यत्वे तु प्रायः सर्वं एव मन्यन्ते यदस्ति गीता कर्तव्याकर्तव्यज्ञानशास्त्रम् कर्मशास्त्रम्। गीतायाः प्रमुखः प्रतिपाद्यो विषयोऽयमेवास्ति यन्मानवेन आजीवनं कर्म, न केवलं कर्तव्यबुद्धया एव, अनासक्तबुद्धया एव ईश्वरार्पणधिया एव अपितु भक्तिभावनयापि विधेयमिति। यथोच्यते गीतायामेवः—

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः॥
कर्मणैव हि संसिद्धि मास्थिता जनकादयः

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

यत्करोसि यदश्नासि यज्जुहोषि पदासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ।।

एव मनासक्तबुद्धया ईश्वरार्पणधिया वा विहितस्य कर्मणो महिमा गीतायामसकृद् वर्णितो दृश्यते । अनासक्त कर्म एव गीतायां यज्ञशब्दे-नाख्यातं तत्फलञ्च बहुत्र निर्दिष्टम् । अनासक्तं च कर्म तदेव यन्न कर्मफलबुद्धया क्रियेत कर्तव्यबुद्धयैव कृतं कर्म अनासक्तं कर्म तत्रोक्तम्, यज्ञफलमुखेन च तत्फलमपि तत्रैव प्रदर्शितम्—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्ट कामधुक् ।

यद्यपि कर्मयोगः स्पष्टं वर्णितः तत्फलञ्च प्रदर्शितं गीतायां तथापि वहवो नाद्याप्यवगच्छन्ति किं कर्म किमकर्म इति । सामान्यतस्तु कर्मणः अकर्मणश्च वास्तविकस्वरूपाववोधे कवयो विद्वांसश्च भ्रान्ता एव किमुत वक्तव्यं सामान्यजनानां विषये, तथापि बहुत्र बहुधा च तत्र स्पष्टीकृतं वर्तते ।

एतदतिरिक्तं तत्रास्ति विधानं भक्तियोगस्य ज्ञानयोगस्य चापि । किं बहुना सत्सर्वमस्ति गीतायां प्रतिपादितं यदस्ति मानवजीवन-सफलयात्रायै परमावश्यकम् इति ।

४४

महात्मा गान्धिः

निसर्गतोऽहरहः परिवर्तनशीले जगतीतलेऽस्मिन् यदा प्राचीनभार-तीयसमुच्चसंस्कृतिभावनानुप्राणितविचाराणां ह्रासो भवति, आध्या-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

त्मिकोदात्तभावा जनमानसाद् विलुप्तप्राया भवन्ति, सर्वत्र भयङ्कर-भौतिकवादस्योत्तरोत्तरं वरीवृध्यमानः प्रसारो जायते, परार्थसाधन-भावनां दूरं नयतः स्वार्थवादस्य घोरभौतिकवादस्य चान्धकारेणोत्त-मादर्शवादस्य ज्योतिराच्छादितं भवति, फलतो विश्वेषां मनःसु घोरा-शान्ति विवर्धते, भौतिकवादस्य प्रवर्धमानप्रभावेण परिवर्तमानमानसा विद्वांसो वैज्ञानिकाश्च शान्तिसाधनीभूतानि कार्याणि परसाहाय्यसंर-क्षणप्रदान् परमोच्चविचारांश्चावधूय जनाहितकराणि विघातकान्य-स्त्रशस्त्राणि युद्धोत्साहसम्वर्धकानि नक्तन्दिवमाविष्कृत्य अशान्ति-विवर्धनायैव प्रयतमाना दृश्यन्ते, तदा विश्वकल्याणकामनानुप्राणित-मानसा दयापरिप्लावितहृदयाः सहृदयाः केचन देवदूता विधातकस्यै-तस्य वातावरणस्यापधाताय कृतसंकल्पा भारतभुवमलंकुर्वन्ति। अत्रोपेत्यैते महानुभावाः स्वविद्याबुद्धिवैभवेन भारतीयगीतोपनिषदादि-ग्रन्थरत्नेषु पौनःपुन्येन विशदीकृतानां तेषामेवोदात्तानां विचाराणां नियमानाञ्च, यैः पुरा भारतं शान्तिस्थलमभूत्, प्रभूतं प्रचारं विधाय, विश्वकल्याणकामनया स्वामूल्यजीवनान्यपि शंसयारुढानि कृत्वा, प्रतिपक्षिजनप्रहितानि असह्यान्यपि क्लेशशतानि प्रसन्नेन चेतसा सह-मानाः शान्त्यर्थं प्रयतन्ते। एतादृशेष्वेव महानुभावेषु महात्मा गान्धि-रप्यासीदेको महानुभावः। योऽहर्दिवमुत्पीडकाना मपरराज्यापहारिणां परधनलोलुपानां वैदेशिकानाममानवीयात्याचारपरिपीडितानां क्लेश-शतजर्जरीकृतानां दासीकृतानां भारतीयानां स्ववन्धूनां दुर्निरीक्ष्यामपि दुर्दशां मुदीक्ष्य विद्रूयमानचेताश्चिन्तयन्ननेकानुपायान् तदुद्धरणाय सुधा-राय च देशस्थितिं, सत्यस्याहिंसायाश्चाश्रयमलभत। प्रचारितश्चानेन यत्त्यागमयाचरणादन्यन्नास्ति शरणं स्वलक्ष्यसिद्धये, स्वराज्यप्राप्तये च सत्याग्रहान्दोलनमेवास्ति परमं साधनम्। भारतीयजनानामैक्यमे-वास्ति परमं बलमिति।

महापुरुषोऽयं श्रीगान्धिमहोदयः पोरवन्दरनगरे राज्यसचिवप्रा-सादे जन्म लेभे। शिक्षां समाप्य वाक्कीलशिक्षायै भारतीयधार्मिक-भावनाभावितान्तःकरणया मात्रा निरुद्धोऽपि "नाहं विदेशे मांसम-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दिरासेवनं करिष्ये, स्वकीयां जननीमिव वन्दनीयां जन्मभुवं न कदापि विदेशस्थितोऽपि विस्मरिष्यामि, स्मरिष्यामि च सदैव भारतीयान् प्राणप्रियान् वन्धुजनानिति तत्समक्षं प्रतिज्ञाय विदेशमगच्छत्। ततः प्रत्यागतेन श्रीगान्धिमहोदयेन स्वराज्यप्राप्तये समानविचारधारानुयायिनां शिक्षितानां स्वदेशानुरागिणां जनाना मेका राष्ट्रीयमहासभा संस्थापिता। 'वास्तविकं भारतं ग्रामेष्वेव वसतीत्यालोच्य ग्रामीणजनानां दशां तेषां मनःस्थितिं च विज्ञातुं स ग्रामाद्ग्रामान्तरं परिभ्रमन्, तत्रत्यान् नैकसामाजिकदोषान् दूरी कुर्वन् दीर्घां पदयात्रामकरोत्। सवर्णजातिपददलितानां तथाकथितानामस्पृश्यानामुद्धाराय तेन 'हरिजनसेवक संघेति विख्याता एका संस्थापि संस्थापिता। विदेशीयानामर्थवृद्धिकरस्य वस्त्रवाणिज्यस्य विनाशाय स विदेशीयवस्त्रप्रयोगस्य वहिष्कारं खादीप्रचारञ्च कृतवान्। प्रचलितां शिक्षाप्रणालीं राष्ट्रीयभावनाघातिनीं मत्वा स वर्धाशिक्षायोजनया नवीनां शिक्षापद्धतिञ्चाविष्कृतवान्। एवं महात्मना तेन अनेकसुधाराः कृताः।

वस्तुतः अहिंसा सत्यञ्चेति द्वावेव गान्धिवादस्य आधारभूतौ सिद्धान्तौ विद्येते। यद्यपि स मानवस्वातन्त्र्यस्य पक्षपाती आसीत् तथापि न हिंसया, न रक्तपातेन, नाप्यन्यायेन अपि तु सहयोगेन शान्तिमयसाधनेन सत्याग्रहेण सामञ्जस्येन विनाशापेक्षया सत्ताधारिणां संरक्षणेन च।

इत्थं स्वालौकिककार्यकलापैः अनन्यसदृशो महापुरुषोऽयं महात्मा देशस्य चिरवाञ्छितं स्वातन्त्र्यमानीय विविधैः सुधारैः स्ववन्धूनुपकृत्य च दिवं गतः। परं दिवङ्गतोऽप्ययं भारतीयानां जनानामद्यापि मानसमन्दिरेषु विराजमानः सपर्यां लभते नात्र संशयः इति।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

४५

चक्रवत्परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च

सततं संसरणशीलेऽस्मिन् संसारे परिवर्तनं नाम शाश्वतिको अनिवार्यो वा नियमः, अत एव अत्रत्याः सकलपदार्थाः अनेन परिवृत्तिनियमेनावद्धाः सदैव परिवर्तनचक्रे भ्रमन्तोऽवलोक्यन्ते । यदा सूर्यचन्द्रसमीरणादयोऽपि नैवैकरसाः सदा तिष्ठन्ति तदा का गणना अल्पायुषां मानवानां मानवभोग्यपदार्थानां वा । न केवलं तारकामण्डल मपितु समस्तं भूमण्डलं सर्वं चैतच्चराचरं जगदेव परिवर्तनचक्रे समावद्धं सत् अहरहः परिवर्तते ।

कदाचिदाकाशे विभ्राजमानः मध्याह्ने ललाटन्तपतामासादयन्नप्यादित्यो झटित्येव अस्ताचलचुम्बिविम्बःसन् निलीयते क्वापि । यो ह्येकदा पूर्णबिम्बश्चन्द्रो मानिनीमानभञ्जको भवति स एव कतिषुचिदहस्सु एतावान् क्षीणकायो जायते यदस्य दर्शनमपि दुर्लभं भवति । एकदा यो वृक्षः फलपत्रभारनतः सन् सर्वैः फलच्छायाभिलाषिभि र्जनैरासेव्यते स एव कालान्तरे नीरसो निष्फलश्च भूत्वा दहनदहनयोग्यत्वमुपयाति । पत्रपुष्पसमन्विता वृक्षमधिरूढा मधुरमध्वास्वादमग्नै र्मधुपैः परिचुम्ब्यमाना लता कालान्तरे नीरसा भुविनिपतिता पशुपादनिपीडिता संलक्ष्यते । एकदा सकलमनुजतनुमनःसमीरणो भूत्वापि समीरणः कतिपयदिवसावसाने ज्वलनज्वालायमानः सकलभुवनं तापयति ।

परिवर्तननियमस्यास्य प्रभावो मानवजीवने स्फुटं विभाव्यते । एकदा यौवनाश्वमारूढः तारुण्यमदमत्तो जनः सकलं जनं तृणाय मन्यमानः कठोरात् कठोरतमान्यपि कार्याणि अनायासेनैव सम्पादयितुमुद्युङ्क्ते स एव कालान्तरे वृद्धत्वमापन्नः पदात्पदमपि गन्तुं न प्रभवति, स्वकीयं जीवनमपि येन केनापि प्रकारेण परमुखापेक्षी भूत्वा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

गमयति । एकदा मानवो धनधान्याद्यैश्वर्यशाली विविधान् सरसान् भोगान् भुञ्जानः अन्यान् दीनजनानपि पालयितुं क्षमते स एव परिवर्तमानस्थितिप्रभावेण निःस्वतां प्राप्तः यवानां प्रसृतये श्रीमतां द्वारमासेवते ।

परिवर्तनस्य नियमेनानेन न केवलं सामान्यजना एव अपि तु महामहिमशालिनोऽपि जनाः प्रभाविता भवन्ति । हिडम्बादिदुर्धर्षराक्षसवधक्षमः शरीरेणाभिख्ययापि भीमः भीमसेनः विराटस्यावासे दर्वीव्यग्रकरो दिवसानत्यवाहयत् । गाण्डीवटङ्कारमात्रत्रस्तारिजनो धनञ्जयोऽपि वीरविग्रहोऽपि पुमानपि भूत्वा नटीव तस्यैवावासे नर्तनशिक्षापरोऽतिष्ठत् । बीरजा बीरजाया बीरजननी भूत्वापि द्रौपदी तत्रैव सैरन्ध्रीति दासीसंज्ञया राजमहिषीं सेवमाना दिनान्यगमयत् । स्वकीयैः दयादाक्षिण्यादिगुणैः स्वीयरूपसौन्दर्यसम्पदा सकलस्त्रैणं नमयन्ती दमयन्ती सर्वदुर्लभदिव्यसुखोचितान् दिविजानपि प्रविहाय वीराग्रगण्यं सर्ववैभवशालिनं नलं पतिं प्राप्यापि परिवर्तननियमनियमिता समयमासाद्य भर्त्राप्यपवाहिता सती अरण्यादरण्यमाहिण्डमाना व्याधसदृशैरपि तुच्छजनैस्तिरस्क्रियमाणा क्लेशशतानि सहमाना परमदुःखेन दिनान्यगमयत् । महाराजो हरिश्चन्द्रो य एकदा याचकाय ब्राह्मणाय स्वकीयं वसुधाधिपत्यमपि प्रददौ, अन्यदा स एव चाण्डालनिकेतनमासाद्य श्मशानसेवामकरोत् ।

सन्त्येतादृशा अनेके दृष्टान्ता ये अवश्यम्भाविपरिवर्तनस्य अनिवार्यत्वं तत्प्रभावञ्च निर्दिशन्ति । जीवनेऽहरहः नित्यनूतनपरिवर्तनानि दृष्टिपथमायान्ति, कदाचित्सुखं कदाचिच्च दुःखं, कदाचिदाशाप्रकाशः, कदाचिन्निराशानिविडान्धकारः, यदि साम्प्रतं सन्तुष्टिः क्षणान्तर एवासन्तुष्टिः, एकतो यदि साम्प्रतं हर्षध्वनिः, क्षणान्तर एवान्यतः क्रन्दनध्वनिः श्रूयते । वाल्यं यौवनं प्रौढत्वं वृद्धत्वं चेति जीवनपरिवर्तनस्यैव विविधानि रूपाणि । न कोऽपि सर्वदा सुखमेवानुभवति न कोऽपि सर्वदा दुःखमेव । कदाचित्सुख माविर्भवति, कदाचिद् दुःखम्, दुःखस्या-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्तर्धाने सुखं, सुखस्यान्तर्धाने दुःखमिति परिवर्तनशीलसंसारस्य नियमः यथोक्तं कविकुलगुरुणा कालिदासेन: –

कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं, दुःखमेकान्ततो वा ।
नीचै र्गच्छत्युपरि च दशा, चक्रनेमिक्रमेण ।।

यदि सुखं दुःखेन नानुगम्येत को नाम सुखाय स्पृहयेत् । यदि सुखाशा न भवेत् को नाम दुःखापघाताय यत्नमाचरेत् । सुखस्य वास्तविकं स्वरूपन्तु तदैव प्रतिभासते यदा दुःखभोगानन्तरमेवास्योपलब्धिर्भवति । यः सर्वदैव सुखमनुभवति दुःखं न जानात्येव, न स सुखमपि वस्तुतो जानाति, यतः 'सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते, घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम्' ।

सुख दुःखयो र्नित्यत्वे तु महाननर्थो जायेत । सुखं सुखिनः शाश्वतं मन्यमानाः विपथगामिनो भवेयुः, अत्याचारपरायणाश्च स्युः, यतो हि दुःखभयभीता एव जनाः सत्कर्मसु प्रवर्तन्ते । दुःखस्य नित्यत्वे तु न कोऽपि पुण्यकर्मसु प्रवृत्तिं कुर्यात्, यदि सत्कर्मणः फलं सुखं न भवेत्, को नाम सत्कर्म कुर्यात् । अतः एतयोरनित्यत्वे एव शान्ति र्जन्यते । चक्रवत् सुखस्य दुःखस्य च परिवर्तनमेव श्रेयस्करमिति ।

४६

आपदां तरणि धैर्यम्

विविधाधिव्याधिबाधिते प्रत्यहं परिवर्तनशीलसुखदुःखदशाधीने जगतीतलेऽस्मिन् को नाम जन्मवान् यो न कदापि दुःखाभिभूतो जायेत । विविधसांसारिककार्यजालव्यग्रचेतसो जनिजुषोऽग्रे यदा कदावसरमासाद्य यत्र तत्र छिद्राण्यन्विष्य विभीषणाकृतयो विपत्तयो निश्चि-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तार्थविघाताय समुपतिष्ठन्ते एव। न केवलं स्वार्थाय परार्थाय वा कार्यपराणां मानवानामेवाग्रे अपितु दिव्योचितपरित्राणसाधनोपजुष्टानां देवानां स्वच्छन्दविहारिणां खगानां परसेवानिरतानां पशूनां भयावहानामपि सिंहव्याघ्रादीनां वन्यपशूनां जलान्तर्गतानां जलजीवानामप्यग्रे समुपतिष्ठन्ते एव। परं को नामोपाय आपदामासां विघातायेति विचारे साधवो धैर्यमेव परमं विपदुद्धरणक्षमं साधनं निर्दिशन्ति। दुःखोदधिनिमग्नानां जनानां समुद्धरणाय केवलं धैर्यावलम्बनमेव तरणिः, धैर्यमेव शरणं नान्यत्। यद्येवं विपत्तयो नियता अवश्यम्भाविन्यस्तर्हि धैर्यंतरण्यवलम्बनमेव श्रेयः। अनेनैव विपद्विघातो विधातव्यः।

प्रबलैः परपीडकैः धृतात्याचारविग्रहै र्मदोन्मत्तै र्दैत्यैः पिशिताशनैः राक्षसै रुद्वेजितानां पराजितानां स्वर्गाद् वहिष्कृतानां गिरिगुहाश्रितानां देवानाम्, प्रवलशक्तिमद्भिः शत्रुभि रपनीतपुत्रकलत्रराज्यवैभवादीनां वने निरुद्देश्यमितस्ततः परिभ्रमतां नृपतीनाम्, परिस्थितिवशाद् दुर्व्यसनवशाद्वा स्वप्रियतमैः परित्यक्तानां दुर्जनै रपहृतानाम्वा वियोगिनीनामवलानाम्, कारणवशाद् मरणाद्वा पितृविहीनानामनाथानामनाश्रितानां बालानाम्, अकस्माद् व्याधपाशवद्धानां जीवनाय विचेष्टमानानां पक्षिणां पशूनाञ्च विपदुद्धरणक्षमं संरक्षकं केवलं धैर्यमेव शरणं, न तेषां धनं, न बुद्धिः, न विद्या, न बलं नाप्यन्ये दयादाक्षिण्यादिगुणा वा तद्रक्षणक्षमा भवन्ति। धैर्यमेवैतादृग् वलं येन दुःसाध्यमपि आशातीतमपि कार्य मनायासेनैव साध्यते, यदाश्रयेण वन्धनग्रस्ता विमुक्ताः, पराजिता विजयिनो, प्रियजनविमुक्तास्तत्सहयोगिनो, भ्रष्टसिंहासनाः सिंहासनारूढाः, हृतस्त्रीकाः सस्त्रीकाः, पाशवद्धा विमुक्ताश्च भवन्ति, न किमप्येतादृशं दुष्करं कार्यं यन्न सम्पद्येत धैर्येण। धैर्यवतां व्यवसायिनां न किमप्यसाध्यं भवतीह लोके। यथोच्यतेः—

"अप्राप्यं नाम नेहास्ति धीरस्य व्यवसायिनः"

यदि भयावहजलजीवसहस्रसङ्कुलेऽगाधसागरे, निशीथकाले, बहुमूल्यवस्तुभि र्यात्रिभिश्च परिपूर्णं समुद्रमध्यगं स्वकीयं पोतं, सर्व-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दिग्भ्यः समुद्भूतैः भयङ्करैः झञ्झावातै रकालोत्त्थितै रितस्ततः परिवर्तमानं क्षणादधः क्षणाच्चोपरि नीयमानं, यात्रिणश्च, विनाशोन्मुखपोतदशां दर्शं दर्शं भयाक्रान्तमानसान्, गृहसुतदारादिकं स्मरतः, रोरुद्यमानान् कांश्चिद् विसंज्ञान् कांश्चिद्धस्तपादादिकमितस्ततो विक्षिपतः, कांश्चिज्जीवनाशया विचेष्टमानान्, कांश्चित्सर्वथैव निराशीभूय स्वेष्टदेवस्मरणपरान् दुर्निरीक्ष्यदुर्दशाभिभूतांश्च, कश्चित्पोतपतिः पश्यति, किं कुर्यात्, कस्य शरणं गच्छेत्, कं सहायकमुपेयात् ? इदानीं केवलं धैर्यमेव तच्छरणं, न वलं नापि विद्याबुद्धयादिकम् । स्थितावस्यां स स्वयं धैर्यतरणिमारूढः सन् येन केनापि विधिना पोतं स्थिरीकुर्वन् यात्रिणश्चाश्वासयन् शनैरापत्कालं विगमयन् प्रशान्ते च झञ्झावातवेगे यात्रिणाञ्च कोलाहले स पोतं पारं नयति । यदेतादृशि विपत्तिकाले स नाश्रयेत् धैर्यतरणिं समुद्रमध्य एव यात्रिभिः सह विपद्येत । अतएवोच्यतेः—
"त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि काले, धैर्यात्कदाचित्स्थितिमाप्नुयात्सः" ।
धैर्यधना हि सुखेन स्वाभीष्टकार्यस्यान्तं गच्छन्ति अन्ये विमुह्य विषीदन्ति । धैर्यशालिनमेव क्षमादमास्तेयशौचाचारदयादाक्षिण्यादयो गुणाः समुपयान्ति, अतो धैर्यमेव सर्वगुणानां निदानं, सर्वसम्पदां मूलं, विपद्बारिधीनां पोतः, नैराश्यपयोधिपयःपतितानां तरणिः, नीतिविशारदानां नीतिः । समरसागरोत्तितीर्षवितां युध्यमानां पराक्रमशालिनां वीराणां परमोत्साहः, दारिद्र्यजिहीर्षावतां व्यवसायसरणिः, रोगिणां परमौषधम्, शोकातुराणामाश्वासनम् । तस्मात्सर्वथा समीचीनमिदं वचनम्—आपदां तरणि धैर्यमिति ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

४७

कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते

रस्यत आस्वाद्यत इति व्युत्पत्त्या आस्वाद्यमानो निर्वृत्तिघनश्चित्त-वृत्तिविशेषः रसपदार्थः । यथा सुमनसो जनाः परमास्वाद्यनाना-व्यञ्जनसुसंस्कृतमन्न मुपभुञ्जाना स्तदधिगतान्नैकविधान् रसाना-स्वादयन्तो हर्षादीन धिगच्छन्ति, तथैव रङ्गशालायां नाटचकलानिष्णातैः रसानुकूलवेषधारकैः कुशलै र्नटै रभिनीयमानान्वागङ्गसत्त्वोपेतान् रति-हासशोकक्रोधोत्साहादीन् स्थायिभावाननुप्रेक्षमाणाः सहृदयाः सरसाः सुमनसो जना व्यञ्जनवृत्या साधारणीकरणेन हास्यकरुणादीनात्म-वासनयानुभवन्ति । एवमात्मान्तःकरणै रनुभूयमानाः सहृदयैः सवासनैः सभ्यै र्नवविधाः शृङ्गारकरुणादयोऽलङ्कारशास्त्राभिज्ञैः सूरिभिः परि-निष्ठिताः रसाः भवन्ति । एतै रनिर्वचनीयै रलौकिकै र्नवविधैः रसैः रसतामा नीतानि विविधै रुत्तमोत्तमभावै रनुभावितानि रीतिगुणाल-ङ्कारैरलङ्कृतानि काव्यानि सरसजनचेतोहराणि प्रशस्यानि, यशोऽर्थ-कराणि लोकव्यवहारज्ञानप्रदानि शिवेतरक्षतिकराणि परनिर्वृत्तिदा-यीनि कान्तासम्मितोपदेशसम्वलितानि च जायन्ते ।

एवमात्मानन्दात्मकास्वादरूपो वेद्यान्तरशून्यः आस्वाद्यरूपो वा रसोपलम्भो भवतीति कथमिति जिज्ञायामित्युक्तं नाटचशास्त्रकारेण "विभावानुभावसञ्चारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिरिति" । वस्तुतो लोके रत्या-दीनां स्थायिभावानां यानि सन्ति कारणानि कार्याणि अथ च सहका-रिकारणानि तान्येव चेन्नाटचकाव्यनिवद्धानि विभावानुभावसञ्चारी-त्यभिख्ययाख्यायन्ते । एतैरेव विभावाद्यैरभिव्यक्तः स्थायीभावः स्मृतः रस इति । परं रसास्वादोऽयं जायते नैसर्गिकवासनावासितान्तःकर-णानामेव सरसहृदयानान्नान्येषां सामान्यजनानाम् । यथोक्तं धर्म-दत्तेनः—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सवासनानां सभ्यानां रसस्यास्वादनं भवेत् ।
निर्वासनास्तु रङ्गान्तःकाष्ठकुड्याश्मसन्निभाः ॥

एवं विभावाद्यैः साधारणीकरणमहिम्नाभिव्यक्तेषु नवविधेषु रसेषु को नाम रसः मूर्धाभिषिक्तः रसराजः सर्वरसानामङ्गी रस इति जिज्ञासायामभिहितं धृतकरुणविग्रहेण महाकविभवभूतिना:—

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान् ।
आवर्तवुद्बुद्तरङ्गमयान् विकारान्
अम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम् ॥

वस्तुतः एकः प्रमुखः करुण एव रसः, सर्वेषा मन्येषां रसानामाधारभूमिः, करुणरस एव प्रकृतिः अन्ये रसास्तस्य विकृतयः । यथा अम्भ एव प्रकृतिः आवर्तवुद्वुद्तरङ्गादयस्तु विकृतयः, तथैव एक एव करुणरसः प्रकृतिः अन्ये शृङ्गारवीरादयः रसाः विकृतयः निमित्तभेदेनैवैता विकृतयो जायन्ते । करुणरस एव रूपान्तरितः सन् शृङ्गारवीरादिरसरूपे विपरिणमते, अतः सर्वरसानामात्मस्थानीयोऽयं करुणरसः, नात्र संशयः ।

भवभूतिरचिते उत्तररामचरिताख्यनाटके करुणरसस्य पूर्णपाको दृश्यते । प्रथमाङ्क एव चित्रदर्शनादेव स्वातीतजीवनवृत्तस्मरणेन विकलतामुपगतौ सीतारामौ विनिःश्वस्य 'ते हि नो दिवसा गताः' इति व्याहरन्तौ पाठकानां दर्शकानाञ्च मनःसु कारुण्यं जनयतः । तदनु गर्भभरालसां निरपराधिनीं प्राणपणेनापि पतिपरायणां सीतां लोकाराधनजीवनः रामो लोकापवादभयेन प्रवञ्चनया हिंस्रकजीवसङ्कुले घोरे शून्ये कान्तारे परित्यजति, अथ चात्र यदा करुणमूर्तिरथवा विग्रहवती विरहव्यथेव जानकी वनमभ्येति, तदा कस्य न सचेतसो मनः करुणापगानिमग्नं भवेत् ।

वस्तुतः करुणरसस्य जनमानसप्रमथनक्षमं स्वरूपं तृतीयाङ्के एवा-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

नुभूयते। वासन्त्या रामं प्रति कथनमिदं कीदृक् करुणाजनकं विभाव्यते:—

अयि कठोर यशः किल ते प्रियं
किमयशो ननु घोरमतः परम्।
किमभवद् विपने हरिणीदृशः
कथय नाथ कथं वत मन्यसे ॥

सीताविवासानन्तरं लोकाराधनपरस्य यशःप्रियस्य प्रियावियुक्तस्य रामस्य केन प्रकारेण हृदयोद्गारमभिव्यनक्ति सकरुणो भवभूतिरित्यपि तत्रैव दृष्टव्यम्। करुणपरीतस्य रामस्य "हा हा देवि स्फुटति हृदयं ध्वंसते देहबन्धः" "विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्यः करोमि" इत्यादीनि वचनानि श्रावं श्रावं न केवलं सचेतनप्राणिन एव वज्रस्यापि हृदयं दलति, नापि सचेतना एवाश्रूणि मुञ्चन्ति, ग्रावापि रोदिति। वस्तुतः भवभूतेः करुणरसः गम्भीरो मार्मिकश्चास्ति, एतस्य पूर्णतः परिपाके तस्य भावप्रवणता प्रतिपदं मुखरी भवति। केवलं भवभूतेरेव करुणरसस्येदृशः प्रभावः येन जडा अपि चैतन्य मभजन्त "जडानामपि चैतन्यं भवभूतेरभूद् गिरा"। नेयमत्युक्तिः यद् यादृशी करुणाया गम्भीरता तीव्रता मर्मस्पर्शिता वा दृश्यते उत्तररामचरितनाटके तादृशी अन्यत्र संस्कृतसाहित्ये नोपलभ्यते, अत एवोच्यते "उत्तरे रामचरिते भवभूति र्विशिष्यते"।

वस्तुतः करुणरसाभिव्यञ्जने भवभूतिः सर्वानेव रससिद्धान् कालिदासादीन पि महाकवीनतिशेते, अत एवाह कश्चित्:—

कवयः कालिदासाद्याः भवभूति र्महाकविः।

यद्यपि भवभूतिकवित्वे ते सर्व एव काव्योचिता गुणा उपलभ्यन्ते ये अपेक्ष्यन्ते उत्तमकोटिककाव्यस्य कृते, तथापि करुणरसकारणादेवायं महाकवीनामपि प्रशंसाभाजनम्। सत्यमिदं यत्सरस्वती वाग्वश्येव भवभूति मनुयाति इति।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

४८

कः परः प्रियवादिनाम्

मुनेरपि वनस्थस्य स्वानि कार्याणि कुर्वतः ।
उत्पद्यन्ते त्रयः पक्षाः मित्रोदासीनशत्रवः ।

इत्युक्तिदिशाभिज्ञायते यदिह विविधाचारविचारर्चचिते जगतीतले सर्वेषामेव जनिजुषां, भवतु नाम कोऽप्येषु वनस्थः केवलमात्मज्ञानाभ्यासनिरतमानसो विगतान्यकार्यो ब्रह्मसमाधिविहिताभियोगो योगी मुनि र्वा, मित्रोदासीनशत्रुरूपं पक्षत्रयं भवति । यदा संसारत्यागिनां वनवासिनां समाधिसाधनासक्तचित्तानां योगिनां सन्यासिनां साधूनामपि भवन्ति केचन सुहृदः, केचन उदासीनाः केचन शत्रवश्च तदा का कथा ईर्ष्याद्वेषदूषितान्तःकरणानां स्वार्थसाधनपराणां परकार्यविघातकानां संसारिणां सामान्यजनानाम् । न कोऽप्येतादृशोऽभिलक्ष्यते पुण्यात्मा पुण्यशीलः पूतभावनाभावितान्तःकरणो जनो, यस्य सर्वे एव सुहृदो भवेयुः, यस्मिन् सर्वे एव स्निह्येयुः, यं सर्वे एवोपकुर्युः, येन सर्वे एव सहानुभूतिं कुर्युः, यश्च स्यात् सर्वेषामेव श्रद्धास्पदम् । परं परमात्मनः परमोत्कृष्टसृष्टौ न ह्येतादृशोऽपि जनो दुर्लभः, स चास्ति प्रियवादी । यश्च सदैव स्वकीयामन्दानन्ददायिवचनामृतेनाखिलजनसन्ताप मपनयति, शत्रूनपि उदासीनानपि च प्रियया गिरा सन्तर्पयति, शत्रूणां कटूक्तीरप्युपेक्ष्य प्रियवचसा तानादरति, प्रियमधुरवचोभिरुदासीनानपि वशीकरोति, स्वयञ्च निर्विशङ्कः प्रसन्नवदनश्च तिष्ठति ।

यद्यपि 'नहि सर्वं सर्वस्य प्रियं भवतीति कथ्यते लोकैस्तथापि सोऽवश्यमेव सर्वप्रियो भविष्यति, यः सर्वकालं प्रियंवदस्तिष्ठति, शत्रून् प्रत्यपि नहि कटुवाक्यं प्रयुङ्क्ते, उदासीनानपि नोपेक्षते अपितु सर्वेषामेव मानसं सूनृतवचोभिरमन्दानन्दवारिधौ निमज्जयति, समाकर्षति

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

च तच्चेतांसि, नर्तयति च तद्धृदयानि । यश्चास्ति सर्वदैव प्रियभाषणायैव कृतसंकल्पः ।

एवम्भूतस्य प्रियवादिनोऽवश्यमेव न कोऽपि परोऽवशिष्यते अपितु सर्वे एव तस्य मित्रत्वमुपयान्ति, शत्रवो मित्रायन्ते, दुर्जनाः सुजनायन्ते, विरोधिनः स्वजनायन्ते च । यदा परभृताः स्फुटार्थहीनेनापि केवलस्फोटात्मकेनापि प्रियमधुरध्वनिना धीमतामपि विरागिणामपि च चेतांसि वशीकुर्वन्ति तदा ज्ञानवतः प्रियभाषणपरस्य प्रियवादिनः प्रियवचनं कस्य न प्रियं स्यात् । वस्तुतः प्रियं वचः सर्वदैवाशान्तस्वभावस्यापि क्रोधान्धस्यापि च झटिति नितान्तमन्तः शान्तिं जनयति, नितान्तचिन्ताक्रान्तचित्तस्यापि जनस्यावसादं व्यपनयति च । नहि किमप्यप्राप्यं भवति प्रियवादिनः, नात्र संशयः ।

परमेतस्माद् विपरीतं यश्च भवति अप्रियवादी तस्य सुहृदोऽपि शत्रवः, सुजना अपि दुर्जना भवन्ति । सहायका अपि तं परित्यजन्ति, पारिवारिकजना अपि न तस्मिन् स्निह्यन्ति । कटुवाक्यप्रहारेण महाननर्थो जायते । कोमलं हृदयन्तु परुषवचनेन विद्धं सद् यावज्जीवं सव्रणं तिष्ठति, यथोच्यते नीतिकारेणः—

छिन्नं रोहति खड्गेन शरै र्विद्धश्च रोहति ।
वचो दुरुक्तं वीभत्सं वाक्क्षतं न प्ररोहति ।।

वस्तुतः यो विमूढोऽप्रियं वचो ब्रूते, तद् वचो न भवति अपि तु तद् विषमेव भवति । सत्यमपि यदप्रियं भवेत् तदपि न वाच्यं, सर्वदैव प्रियं ब्रूयात्, परं न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् । प्रियवचनप्रयोगादन्यन्नास्ति प्रियकरं नृणाम् । वचःप्रभावोऽपरिहेयो भवति । सौन्दर्यं धनादिकं वा न कोऽपि जनस्य प्रथमपरिचये पश्यति, पश्यति तु प्रथमं वाग्व्यवहारमेव तद्वचनक्रममेव च । अतः वाक्यप्रयोगे सर्वदैव सावधानैरस्माभिर्भवितव्यम्, अप्रियन्तु वचो विस्मृत्यापि न प्रयोक्तव्यम्, स्मरणीयञ्चैद्विषये नीतिकृद्वचनमिदम्:—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वाङ्माधुर्यान्नान्यदस्ति प्रियत्वं वाक्पारुष्याच्चोपकारोऽपि नेष्टः ।
किं तद्द्रव्यं कोकिलेनोपनीतं को वा लोके गर्दभस्यापराधः ।।

४६

विकार हेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि ते एव धीराः

मनोविकारकारिवहुविधवस्तुसमूहाश्रये संसारेऽस्मिन्नवलोक्यन्तेऽनेकेऽसंख्येया धैर्यापसारिणो विकारहेतवः, परमत्र तेषु केचिदेव ते निर्दिश्यन्ते ये वहुधा वहुत्र च नीतिविद्भि रन्यै रपि विज्ञजनै रभिहिताः । एतदर्थमत्र प्रथमं नीतिविदां विदुषां लोकानुभवशीलानां जनाना मुक्तयोऽध्येतव्याः, ताभिश्च चेतोविकारहेतूनामप्रतिमः प्रभावोऽवगन्तव्यः—

"उपनिषदः परिपीताः गीतापि हन्त श्रुतिपथं नीता ।
तदपि न सा विधुवदना, मानससदनाद् वहि र्याति ।।

कन्दर्पदर्पदलने विरला मनुष्याः । कामो वामो मनुष्याणाम् । अपारे खलु संसारे सारं सारङ्गलोचनाः । कं स्त्रीकृता न विषयाः परिपीडयन्ति । स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः । कं न वशीकुरुते भुवि रामा ।

वेधा द्वेधा भ्रमं चक्रे, कान्तासु कनकेषु च ।
तासु तेषु च नासक्तः, साक्षाद् भर्गो नराकृतिः ।।

उद्धृतै रेतै र्वचनै र्विज्ञायते यत् कामः कान्ता काञ्चनञ्चैतानि त्रीण्येव धैर्यविध्वंसकेषु विकारहेतुषु मूर्धन्यतमानि, यद्यपि सन्ति यशः मृत्युः दुःखं विपत्तयः एतान्यपि विकारहेतुभूतानि । एषां समक्षमुपेत्य येषां चेतांसि न विक्रियामुपयान्ति त एव वस्तुतो धीराः, न तु ते, ये

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मनोविकारहेतुभूतासंख्येयपदार्थाश्रयं संसारं प्रविहाय किमपि जनसञ्चाररहितं निर्जनं वनमध्युष्य तपश्चरन्तो दिनानि गमयन्ति । यद्यपि सन्तीदृशान्यपि निदर्शनानि यानि प्रमाणीकुर्वन्ति, यद् वन्यकन्दमूलफलाशनानां तपस्तप्यमानानामपि तपस्विनां मुनीनामपि चेतांसि अप्सरोभि र्विकृतिमुपनीतानि तथापि सन्ति शिवशुकादीनां तत्त्वतो धीराणामपि दृष्टान्ता ये साधयन्ति यत्सत्स्वपि दृढतमेषु विकारहेतुषु वस्तुतो धैर्यधनानां चेतांसि न विक्रियन्ते, अपि तु विकारहेतव एव विक्रियन्ते । मन एव कारणं भवति विकारस्य सर्वस्याप्यनर्थस्य च, परमिदं मनो येन जितं तेन सर्व एव विकारहेतवो जिता वशीकृताश्च ।

यदा भगवत्याः पार्वत्याः समक्षमेव योगिराजेन शिवेन त्रिलोकविजयी विकारहेतुः मनोभवः क्रोधाग्निना निर्दग्धस्तदा भग्नमनोरथा सती निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती । एवं धैर्यधनस्य स्थिरचित्तस्य शुकदेवस्यापि दृष्टान्तं वयं जानीमः । पर मेतादृशाः कियन्तः सन्ति भूतले ? सर्व एव प्रायः विकारहेतु मुपेत्य धैर्यं त्यजन्ति । मनोरमाभिश्चेतोहराभिः कामिनीभिः कस्य मनो न ह्रियते, वामा इमाः कं न कदर्थयन्ति, कं न वशीकुर्वन्ति च । तावदेव धैर्यशालिनां धैर्यं यावत्तेषु हृदयहारिणीनां कामिनीनां कुटिलकटाक्षवाणा न निपतन्ति । आसां कुटिलभ्रूभङ्ग मात्रेणैव मानवमनःसु चिरस्थितं धैर्यं प्रपलायते । धैर्यस्खलनोत्तरं जनस्तथैव करोति यथैता इच्छन्ति ।

एवमेव काञ्चनमपि जनानां धैर्यमपहरति । उपनीतं धनं वीक्ष्य न केवलं दरिद्राणा मेव मनो विक्रियते अपि तु धनवतां धनैः परितृप्त मपि मनो विचलितं भवति । परित्यजन्तु नाम दरिद्राः कदाचिद् धनेहां परं न कदापि धनवन्तः, यतो हि ते जानन्ति यत् सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते, धनेनैव निरक्षरोऽपि पण्डितो भवति, निर्गुणोऽपि सगुणः, अगम्योऽपि गम्यः बुद्धिहीनोऽपि बुद्धिमान्, शत्रुरपि सुहृत्, परोऽपि आत्मीयश्च भवति । अतो धनस्य समक्षं सर्वेषामेव धैर्यस्खलनं जायते नात्र संशयः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एवम्मरणमप्यस्ति विकारकारणं येन धैर्यं नश्यति । वीराः हृष्ट-पुष्टाङ्गाः बलेनाधरीकृतशत्रवः निर्भया अपि जना मृत्यु मासन्नं विज्ञाय विकम्पन्ते, मृत्युवार्ताश्रवणसमकालमेव तेषां धैर्यं स्वत एव पलायते पुनः पुनः निवार्यमाणमपि न परावर्तते । एवमेव विपद्दुःखादयोऽपि सन्ति विकारस्य कारणम् परमस्माभि र्विपत्तिकाले न विस्मरणीयं वचनमिदम्—आपदां तरणि धैर्यमिति ।

५०

अहिंसा परमो धर्मः

सामान्यतः कस्यापि निरपराधिनो जीवस्य परिपीडनं व्यापादनञ्च हिंसा, परिपालनं संरक्षणं वा अहिंसा कथ्यते । स्वार्थसाधनाय कस्यापि जीवस्य वृत्तिविघातः, तज्जीविकोपार्जनमार्गावरोधः, तदपमानः, तद्-धनापहरणं, तदाश्रितानामुपहननं, एतत्सर्वं हिंसैव, निष्कामभावेन दीनानां निरपराधिनां वृत्तिविधानं तज्जीवननिर्वाहसाधनेषु साहाय्य-दानं, रोगिणां दुर्गतानां निःसहायानां सेवाकरणं, पथभ्रष्टानां समुचित-मार्गप्रदर्शनं, अवनतिगर्तनिपतितानां समुद्धरणम्, एतत् सर्व मर्हिसैव । न केवलमेतदेव मनसाप्यपरेषामहितचिन्तनं, वचसा परुषवाक्यप्रयोगः, कर्मणा चापि परकार्यविघातः हिंसैव भवति, एवञ्च अहरहः परेषां दुःखविघातानुचिन्तनं परचित्तानुरञ्जनाय प्रियवचनप्रयोगः, परवृत्ति-साधनोपकरणप्रदानञ्च अहिंसैवाभिधीयते । संक्षेपतः मनसा वाचा कर्मणा परहितसाधन मर्हिसावृत्तिः एतद्विपरीता वृत्तिः हिंसेति व्यव-ह्रियते लोके ।

परं किमेतेन तेऽपि राज्यशान्तिव्यवस्थाधिकारिणः राजपुरुषाः

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हिंसकाः स्युः, ये चौर्य्येण परद्रव्यापहारिणः परायत्तजीविकासाधनलुण्टाकान् राज्यशासनव्यवस्थोपघातकान्, राज्यनियन्त्रणनियमापघातकान् राज्यसम्पत्तिनाशकान् राज्यनियमविधिना आवध्य दण्डयन्ति कारागारेषु वा निपातयन्ति मृत्युदण्डेन वा योजयन्ति अथवा कदापि तेषां दण्डनीत्या द्रव्यापहारं जीबिकोपघातं वा कुर्वन्ति । एवमेव यदि कदाचित् मान्या नागरिका अपि कामान्धान् दुष्टवृत्तीन् धनलोलुपान् लुण्टाकान् चौरान् परपुत्रकलत्रापहारोद्यातान् विगर्हितान् नराधमान् दण्डयन्ति पीडयन्ति जीविकापघातं वा कुर्वन्ति तेऽपि किं हिंसका एव स्युः ? अथवा केचन विदेशीयाः शासनाधिकारिणः परराष्ट्रसम्पत्तिलाभमोहेन पार्श्ववर्तिनं देशमात्मसात् कर्तुं सहसाऽभ्यपतन्ति धनवलेन शस्त्रास्त्रवलेन सैन्यवलेन वा विध्वंसं जनयन्ति, धनानि लुण्टन्ति, स्त्रियोऽपहरन्ति, मन्दिराणि गृहाणि च निपातयन्ति च, तद्देशवासिनश्चापि यदि कदाचित् तान् आक्रमणकारिणः लुण्टाकान् समूलघातमुपहन्तुमिच्छन्ति, व्यापदयन्ति वा तेऽपि किं हिंसकाः स्युः, एवमेव यदि कोऽपि मादकपदार्थसेवनोन्मत्तः वलात्काममपि स्त्रियमाकर्षति, तद्रक्षायै यदि कोऽपि नागरिक स्तं ताडयति, ताडनेऽप्यसमर्थः सन् अन्यसाहाय्येन तमुपहन्ति च किं स हिंसावृत्तिः स्यात्, अथवा यदि कोऽपि मदोन्मत्तः कारणं विनैव शान्तचित्तमपि स्वस्थानस्थितमपि कमपि पुरुषमभ्युपेत्य तम् हन्तुमुद्यतो भवति, तदानीं सोऽपि पुरुषो यदि स्ववलेन अन्येषां वा साहाय्येन दुर्मदान्धं तं समूलमुच्छिनत्ति, किं स हिंसावृत्तिः भवेत् ? परं नैते हिंसकाः नापि एतेषां कार्यं हिंसासाधनम् । हिंसा तु सैव भवति या स्वार्थसाधनदृष्टचा परविघातिनी भवेत् । या तु हिंसा निष्कामभावनया परहितसाधनापेक्षया नियोजिता भवेत् सा तु अहिंसा एव । यथोच्यतेः—

"आततायिनमायान्तं हिंस्यादेवाविचारयन्"

स्वार्थसाधनधिया अन्यायेन निरपराधिजीवहिंसैव हिंसा न तु

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अन्यायोन्मूलनाय स्वधर्मस्य परधर्मस्य वा संरक्षणाय सम्पादिता हिंसा, हिंसा कथ्यते । अतः किं कर्म किमकर्मेति विचारपूर्वकमेव हिंसा अहिंसा वा साध्या । नहि सर्वत्र अहिंसापालनेन लोकाभ्युदयो जायते । सर्वत्रैव यदि अहिंसाचारो भवेत् न कोऽपि देशो जनो वा स्वोन्नतये प्रभवेत् । हिंसयापि यदि यथाकालमावश्यकं भवेत् स्वजीवनरक्षणं स्वराष्ट्ररक्षणं न्यायेनोपार्जितं स्वसम्पद्रक्षणं वा अहिंसावृत्तिरेव, आततायिवधः, विश्वासघातिवधो वा अहिंसावृत्तिरेव ।

अहिंसा परमो धर्म इति नहि सार्वत्रिको नियमः, अस्तु नामायं योगिनां वनवासिनां तपोध्याननिरतानां परित्यक्तसांसारिकव्यवहाराणां कन्दमूलफलजीविनां जनानां कृते, परं लोकाभ्युदयकामानां संसारकार्यविहिताभियोगानां कर्मपथपथिकानां जीविकोपार्जनासक्तचित्तानां स्वकुटुम्बभरणभारवाहकानां स्वजातिधर्मराष्ट्रसंरक्षकानां कृते तु यथाकालं यथास्थिति विचारपूर्वक मेव हिंसायाः प्रयोगः अप्रयोगो वा श्रेयस्कर इति ।

५१

उत्तमं हि धनं विद्या

अर्थ मूलमिदं जगदिति धारणा सर्वत्रैव निरुढप्राया सर्वमान्या वा संलक्ष्यते, फलतोऽद्यत्वे आराजरङ्कं सर्वो लोकोऽहर्निशमर्थमेव चिन्तयन् धनमेवार्जयन् तदेव स्तुन्वन्, तदेवानुधावन्, तल्लिप्सयैव सांसारिकेषु नैकविधेषु साध्येषु दुःसाध्येषु वा कार्यजालेषु आत्मानं विक्षिपन् तदर्जनेन च परमं सुख मनुभवन्नत्रलोक्यते । लोकजीवनसुखाय नास्ति धनादन्यत् साधनम् । विद्यापि धनाधीना, बुद्धिरपि धनाधीना,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

साहाय्यमपि धनाधीनं, गुणा अपि धनाधीनाः, कला अपि धनाधीनाः, जना अपि धनाधीना जगदपि धनाधीनमेव, अप्राप्यं नाम नेहास्ति धनिनो हि व्यवसायिनः। सर्वे सदाचाराः, सर्वे व्यवहारा धनेनैव साध्यन्ते अतो धनस्य प्राधान्यं नातितरां दूरं याथार्थ्यात्। नैकशोऽस्माभि रध्यक्षीक्रियते धनाभावेन विदुषां दुर्दशा, कलाभिज्ञानां दुर्गति र्वा। पीड्यन्ते दरिद्राः, उत्सार्यन्ते दीनजनाः, तिरस्क्रियन्ते निर्धनाः। श्रीमतां कृपाकटाक्षाभिलाषिणो विद्वांसोऽपि तद्द्वारदेशमुपाश्रित्य वाग्देवीं नर्तयन्तो निकृष्टामपि तत्सेवावृत्तिमाचरन्तो धनाशयाताननुधावन्तश्चाभिलक्ष्यन्ते का वार्ता सामान्यजनानाम्। एतदेवास्ति कारणं यज्जगदिदम् अर्थमूल मुच्यते। वस्तुतो द्रारिद्र्यान्मरण मेव श्रेयः यथोक्तं मृच्छकटिक कारेण :—

दारिद्र्या न्मरणाद् वा मरणं मम रोचते न दारिद्र्यम्।
अल्पक्लेशं मरणं द्रारिद्र्यमनन्तकं दुःखम्॥

परं नहि धनं सर्वकार्यसाधकम्। कानिचित् कार्याणि सिद्ध्यन्ति धनेन नहि सर्वाणि, लोकाभ्युदयो लभ्येत धनेन, परं नहि निःश्रेयसाधिगमो धनेन कदापि सम्भाव्यते। जागतिककार्येषु यथा भौतिकोन्नतिरिष्यते तथैव पारलौकिकोन्नतिरपि। सन्तु नाम धनानि भौतिकोन्नतिसाधनानि, पर मेतै र्न कदापि आध्यात्मिकोन्नतिरवाप्यते, इयन्तु साध्यते केवलं विद्ययैव नान्यथा। विद्याबुद्धिमद्भिरेवार्था लभ्यन्ते, विमूढा नानुपश्यन्ति धनोपार्जनसाधनानि, पश्यन्तोऽपि न साफल्यमुपयान्ति, विद्यया बुद्धिविकासः तेन च धनार्जनं धनसंरक्षणं वा सम्भवति। अतो विद्यैवोत्तमं धनं, विद्यामूलं हि धन मित्यवधारणीयम्।

अन्यच्च वैशिष्ट्यं विद्याया धनापेक्षया। धनानामर्जिताना मपि संरक्षणे दुःखमनुभूयते, भारकारि च भवति धनम् परं विद्या तु अर्जिता यदि, संरक्षिता तिष्ठति, नैवास्याः संरक्षणे चौरभीतिः, राजभीतिः, दण्डभीति र्वा, नैवेयं भारकारिणी भवति। विद्वान् पुरुषो यत्र कुत्रापि देशे विदेशे वा परिभ्रमति, विद्या अनाहूतापि तमनुसरति, तत्साहाय्यं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विधत्ते धनार्जनेऽपि। धनेष्वपगतेषु व्ययीकृतेषु वा दुःखानुभूतिरेव भवति परं विद्याया उपयोगे सुखानुभूतिरेव जायते। व्ययङ्गतापि विद्या नित्यं वर्धते, धनानि च क्षीयन्ते। अतो धनानि वाग्देवतायाः समतां कर्तुं न कदापि प्रभवन्ति। अन्यदेतद् यद् धनं विद्यार्जने सहायकं भवति। धनेन बिना यदि नास्ति असाध्या तथापि धनसाहाय्यं विना विद्या दुःसाध्या एव। सुखानां दुःखानाञ्च पर्यायेण गतिः स्वाभाविकी नात्र कारणं धनं न वा विद्या। परं नात्र विवादः, यद् धनादुच्चतरा विद्या। अतः सत्यमिद मुच्यते—उत्तमं हि धनं विद्या दीयमानं न हीयते।

५२

देवो दुर्वलघातकः

मायिकप्रपञ्चाचारविचाराश्रये परमात्मलीलामये जगतीतलेऽस्मिन् जनजीवनसफलतालतोच्छेदनकर्तृ दुर्वलत्वं महत्पातकम्। कां कामपि दुर्दशान्नोपनयति जनान् दुर्वलत्वमेतत्। दौर्वल्यमेतत् करतलगत मपि धनादिकं नाशयति जनानाम्। अतएव एतन्नामश्रवणेनापि विकम्पन्ते हृदयानि सवलानामपि, सुधियां धियोऽपि मलिनीभवन्ति। सर्वविधस्य वलस्या भावः सूच्यतेऽनेन दौर्वल्येन। जनधनमानगुणविद्यावुद्धिप्रभुत्वसैन्यादीनि सन्ति मानववलानि, दौर्वल्यं नाम सर्वेषा मेवैतेषां विनाशकम्। यथा दुर्वलन्नोपयाति लक्ष्मीः तथैव धनजनवलादयोऽपि तं परिहरन्ति दूरत एव। भवति च दुर्वलोऽसहायो निःस्वश्च। दुर्वलतापिशाचिनीयं यं कमपि दुर्भाग्यशालिनं जनं समालिङ्गति स सर्वगुणनिधानोऽपि सर्वशक्तिसमन्वितोऽपि परित्यज्यते मत्या समुन्नत्या स्तुत्या च; परिहीयते च गुणैः, सुहृद्भिः, वान्धवैश्चापि, फलतस्तस्य जीवनयात्रापि सुदुस्तरा भवति, जीवनमपि च भारायते।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

एवम्भूतां यशोधनहारिणीं नरत्वनिष्फलकारिणीं सर्वदुर्गतिविधायिनीं अवमानकारिणीं भयावहां दुर्वलतां कीर्तिकामिनीकमनीयकरावलम्बनार्थी को नाम स्वीकुर्यात्। सर्वे दुर्दशाविशेषा दुर्वलानामेव कृते परिदृश्यन्ते, प्रयतमाना अपि दुर्वलजना नैतानपाकर्तुं प्रभवन्ति। यदि सौभाग्यात् कोऽपि तस्मै धनं भोजनं वा ददाति न स प्रभवति तद् भोक्तु मपि दौर्वल्यात्। यदि कोऽपि तं स्नेहेनोपकरोति, जीविकासाधनञ्च तत्कृते विदधाति, परं दौर्वल्यदोषान्नहि तदपि कर्तुं क्षमते।

दौर्वल्यमेतद् भवति द्विविधम्-शारीरिकं मानसिकञ्च। शरीरदौर्वल्यस्य भवतु नाम चिकित्सको लोके परं मानसिकदौर्वल्यस्यापहारको नास्ति धन्वन्तरिरपि। सर्वथैवासाध्यं भवति मानसिकं दौर्वल्यम् दौर्वल्यपरिगता स्तिरस्क्रियन्ते लोकैः, उपभुज्यन्ते पदे-पदे वलवद्भिः, अवमन्यन्ते सद्भिः, दण्ड्यन्ते राजभिः, आकृष्यन्ते दुर्जनैः, प्रतार्य्यन्ते पिशुनैः, उत्सृज्यन्ते प्रियजनैः, विनिन्द्यन्ते साधुभिः परित्यज्यन्ते विद्वद्भिरपि। अतो दुर्वलैरेभि र्वलोपचये प्रयत्नो विधेयः। सन्तीह लोके नैकविधानि साधनानि वलोपचये—ब्रह्मचर्येण लभ्यते शारीरिकं वलम्, विद्यया बुद्धिवलं, पौरुषेण धनवलं, समुत्साहेन राज्यवलम्, योगेन तपसा च दिव्यवलमपि।

सर्वे वयं नैकशः पश्यामो दुर्वलताया दुरन्तान् दुर्दशाविशेषान्। पशुवलिप्रधानयज्ञेषु छागस्यैव दुर्वलत्वाद् वलि र्दीयते, न सिंहस्य, न व्याघ्रस्य, न द्वीपिनः, न गजस्य नाप्यन्यस्य कस्यापि सवलस्य प्राणिनः। एतेषां सवलपशूनां नाममात्रेण न केवलं मानवा देवा अपि विभ्यति। झञ्झावातो न शिलोच्चये मूर्च्छति दुर्वलान् पादपानेवोत्पाटयति, वातो दीपकमेव निर्वापयति न सूर्यं नापि चन्द्रमसम्, व्याधः हरिणानेव निवध्नाति न सिंहान्। सत्यमेतत् कृशे कस्यास्ति सौहृदम्। अतः सत्यमिदमुक्तं यद् दुर्वलानां धातकः न केवलं मनुष्यः अपि तु देवोऽपि—यथोच्यते :—

अश्वं नैव गजं नैव सिंहं नैव च नैव च।
अजापुत्रं वलिं दद्याद् देवो दुर्वलघातकः॥ इति।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

५३

सहसा विदधीत न क्रियाम्

दृश्यन्ते हि लोके द्विविधा जनाः, एके करणीये कार्ये समुपस्थिते तत्र सहसैव प्रवृत्तिं कुर्वन्ति, अन्ये किमपि करणीयमाकलय्य प्रथमं बहुकालं तत्कार्यस्य फलाफलमनुचिन्तयन्ति, प्रारम्भाय च तस्य शुभ-मुहूर्तं पृच्छन्ति, तदनु कार्यं प्रारभन्ते। ये खलु किमपि करणीयं श्रुत्वा न सहसैव तत्साधनाय प्रवर्तन्ते, मुहूर्तादिपरिगणने सञ्जीभवने फला-फलनिर्धारणे कालं क्षपयन्ति ते अलसाः कार्यविद्वेषिणो वा गण्यन्ते। एतेषामलसानां कार्यस्य क्षिप्रकारित्वाभावात् शुभ मपि फलं कालः पिबति, न ते तत्कार्यफलमवाप्नुवन्ति, यतो हि क्षिप्रकारित्वमेव कृत-कार्यफलावाप्तये प्रथमं सोपानम्भवति। कर्तव्यं न वा कर्तव्यमिति विमृशन्तोऽलसा आजीवनं न किमपि साधयितुं क्षमन्ते, परं क्षिप्रका-रिणस्तु त्वरितमेव कार्याभियोगेन तत्फलभोगिनो भवन्ति।

वस्तुतः सहसैव कार्यं कुर्वन्तो जना महनीया भवन्ति, तेषां कार्य-साफल्यमवलोक्य यत्र लोकास्तानादरन्ति तत्र न किञ्चिदपि कुर्वतः केवलं विमृशतो जनान् निन्दन्ति। दृश्यते हि लोके, यद् यावद् दीर्घ-सूत्रिणो मुहूर्तं पृच्छन्तः करणीयं न वा करणीयमिति विमृशन्ति ताव-देव क्षिप्रकारिणस्तत्कार्यं विधाय साफल्यजुषो भवन्ति। सन्तीदृशा अपि केचिद् ये पदे पदे फूत्कुर्वन्तः निष्कण्टकां धूलिरहिताञ्च भूमिं विधाय शनैः शनैः पादौ निक्षिपन्तः आदिवसं चलन्तोऽपि न क्रोशमपि गन्तुं क्षमन्ते, अन्ये तु धूलिकण्टकादीनां चिन्तां विहाय सम्भावितां चरणक्षतिमप्युपेक्ष्य ससाहसं धावमानास्त्वरितमेव लक्ष्यस्थानं प्राप्नु-वन्ति। यावदेके सज्जीभवन्ति तावदन्ये समाप्तकृत्याः सफलमनोरथा भवन्ति। युद्धक्षेत्रे यावदेके सैनिकाः पराक्रमणं निशम्य शस्त्रास्त्राणि सज्जीकुर्वन्ति, आत्मरक्षासाधनानि संयोजयन्ति, सेनापतिनिदेशञ्च

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रतीक्षन्ते, तावदेवान्ये क्षिप्रकारिणः परितः समेत्य तेषां निष्क्रमणमार्गमप्यवरुध्य तानवहत्य सर्वमेवात्मसात् कुर्वन्ति। एतेन स्पष्टं यत् क्षिप्रकारिता सर्वत्र सर्वदैव लाभकरी भवति, न तु दीर्घसूत्रता, यतो हि मानवानां जीवनं लघु भवति करणीयञ्च विपुलम्, एतदालक्ष्य अल्पकालिके जीवने निश्चितकाले एव सकलकरणीयस्य परिसमाप्ति विधातव्या, न नेयः कालः विविधविचारप्रपञ्चगर्तनिमज्जनोन्मज्जनेन जनेन। कार्ये समुपस्थिते झटिति करणीयाकरणीयनिर्णये महाजनाचरितवर्त्म एव प्रथमं साधनं यच्च सर्वेषां सुलभम्।

परमत्रैतदपि चिन्तनीयं यदुक्ता महाकविभारवेः सूक्तिस्तु सहसा कार्यसम्पादनाय निषेधति—सहसा विदधीत न क्रियामिति। अतः किमस्ति तात्पर्य मेतस्याः सूक्ते रिति विचारे इत्येवावधारणीयं, यदत्र सहसेत्यस्य अविमृश्यकारित्वप्रतिपादने तात्पर्यं न तु क्षिप्रकारित्वप्रतिषेधने यतः कविना द्वितीयपङ्क्तौ स्वयमेवैतत् स्पष्टीकृतम्–"वृणुते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः"। दीर्घसूत्रता आलस्यं वा नास्ति गुणः, अपितु दुर्गुण एव, क्षिप्रं विमृश्यकारिता गुणमध्ये गण्यते। गुणलुब्धाः सम्पदः विमृश्यकारिणमेवोपयान्ति न तु अविवेकिनं सहसैव कार्येषु प्रवृत्तिकारिणम्।

कदाचिज्जीवने एतादृगप्यवसरः समायाति यत्र सहसा क्रियां कृत्वा अविमृश्यकारी पश्चात्तापं करोति। तद्यथानुश्रूयते यदेका स्त्री कुतश्चिदेकं नकुलमादाय स्नेहेन तं पालितवती। नकुलश्च तदीयभरणपोषणविधिना सन्तुष्टः तद्गृहे एव तिष्ठति। यदा सा कार्यवशाद्बहिर्याति तदा स तच्छिशुं परिरक्षति। एकदा सा नकुलं शिशुरक्षणाय समादिश्य घटमादाय जलमानेतुं गता, अत्रान्तरे एकः सर्पः शिशुदंशनाय तच्छयनसमीप मागतः। नकुलश्च त्वरितमेव तं निपात्य स्वतीक्ष्णदन्तैस्तं खण्डशः कृत्वा शिशोःशयनतले निक्षिप्तवान्। जलपूर्णंघटमादाय प्रत्यागता सा अविमृश्यकारिणी स्त्री नकुलमुखं रक्तानुलिप्तमवलोक्य शिशुघातशंकया क्रोधाविष्टा सहसा तं घटं नकुलोपरि प्रक्षि-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्तवती, तेनासौ पञ्चत्वं गतः। पश्चात् पुत्रमपरिक्षतं सर्पञ्च मृतं विलोक्य पश्चात्तापमनुप्राप्ता इति। इत्येवास्ति सूक्तेः परमार्थः।

५४

उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्

लोकेऽस्मिन् जातमात्रेण जन्तुना सहैव संजातौ मानवलोकस्य द्वावेव धर्मौ परिदृश्येते—आहारो निद्रा चेति। प्राधान्येनैतौ द्वावपि शरीरेण सम्बद्धौ, मनसा त्वेतौ कदाचिदेव सम्वन्धमपेक्षेते न सर्वदैव, परमेतदनुजातौ अहङ्कारममकारा वित्याख्यातौ द्वौ धर्मौ मनसैवाधिकमभिसम्वद्धौ भवतः, शरीरेण तु कदाचिदेव, अर्थात् प्रथमौ द्वौ शारीरिकौ द्वितीयौ तु मानसौ धर्मौ। अनुजातयो रप्यनयो र्द्वयो रपि धर्मयो रेतादृशं प्राबल्यं यदेतौ तानपि वनवासिनः तपस्विनः न क्षणं मुञ्चतः, ये खलु अन्नपानादिकं विहाय केवलं वायुना प्राणधारणं कुर्वन्तः बहुमूल्यवन्ति शयनासनगृहादीनि परित्यज्य कण्टकाकीर्णा वनभूमिमाश्रयन्तः परमवैराग्यासक्तचेतसस्तपस्यन्ति। यदेतौ अहङ्कारममकारौ न परित्यजत एतादृशानपि तपस्विनः का कथा सामान्यजनानां सांसारिककार्यजालनिपतितानाम्। एते तपस्विनोऽपि संसारं तत्कार्यकलाप तद्विषयञ्च परित्यजन्तोऽपि 'अहमस्मि ईदृशो ब्रह्मज्ञः निर्विकल्पकसमाधिस्थः, ममास्ति ईदृङ् माहात्म्यम्, अतः पर मप्यहं लप्स्ये' इति भूयो भूयः चिन्तयन्तः श्रूयन्ते। एवमनिवार्यौ मानवधर्मा वेता वहङ्कारममकारौ यद्यपि सहजन्मानौ तथापि गम्भीरदृशा पर्यालोचनेऽहङ्कारादपि पूर्वं ममकारोऽजायत इति प्रतीयते, यथा सर्वथा हङ्कारगन्धमात्रशून्ये जातमात्रे शिशौ कतिपयदिवसानन्तरमेव ममकारस्यास्य प्रभावेण

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रथमं मातृविषयिणी तदनु पित्रादिविषयिणी ममत्वभावना समुत्पद्यते। गच्छता कालेन बालोऽसौ नैकविधेषु विषयेषु भावनयानया प्रवर्तमानः उत्तरोत्तरमुपचीयमानेन ममकारेण सहैव विवर्धते। एवं वयःप्राप्तः स एव 'ममेदं गृहं, ममेदं धनम्, ममैवैते वान्धवाः, ममैतादृशी विद्वत्ता, ममैतादृशी वलवत्ता' चेत्यादिरूपेण, ममत्वभावनेयं 'अहं धनवान्, अहं बलवान्, अहं विद्वानित्यादिरूपेण अहङ्कृति मप्युद्भावयति। एवं ममकारोऽयं संसारमूलं सर्वेषामेवानर्थानामादिकारणञ्च भवति। अस्यैव ममकारस्य नाशाय कियन्तो योगिनो यतन्ते, परमेतेषु कियन्तः सफला भवन्तीति कथनं कठिनमेव।

ममकारोऽयमनिवार्य एव, न कोऽपीमं स्वहृदयादपाकर्तुं प्रभवति। न यावन्ममकारोऽयं नश्यति तावन्नोदेति उदारचरितता। अतः उदारचरिततावाप्तये, यया समस्तं भूमण्डलमात्मकुटुम्बमेव परिदृश्येत, कोऽपि उपायः अन्वेषणीयः। परं यद्यपि ममकारस्य ममकाररूपेण विनाशाय न विद्यते कोऽप्युपायः, तथापि ममकारसम्वद्धान् दोषानपाकर्तुमस्ति उपायः। स च ममकारं परित्यज्य ममकारविषयाणां विस्तृतीकरणम्। तच्चेत्थं चिन्तनीयं यत् न केवलं पुत्रदारगृहादय एव मम अपितु सर्वमेव जगन्ममैव न कस्याप्यन्यस्येति। एवं हि चिन्तने ममकारसम्वद्धाः सर्व एव दोषा ममकारोत्पादिता विलयं यास्यन्ति। विलयङ्गतेषु ममकारदोषेषु समुदेष्यति उदारचरितता तया च विश्वकुटुम्बकल्पना।

यद्यप्यद्यत्वे दृश्यन्ते एकदेशीया जना देशान्तरस्थान् प्रद्विषन्तः, एकप्रान्तीयाः प्रान्तान्तरस्थान् निन्दन्तः, एक भाषाभाषिणः, परभाषा दूषयन्तः, एकपक्षीयाः अपरपक्षीयान् पीडयन्तः, एकवंशजा अन्यवंशजांश्च, तथापि सन्ति आसंश्च कतिपये उदारचरिता महानुभावा ये 'अयं निजः परो वेति लघुचेतसां गणानां विहाय सकलजनकल्याणमात्मकल्याणमेवाकलयन्तः, सर्वेषां दुःखमात्मदुख मनुभवन्तः, सर्वेषां कार्य मात्मकार्यं गणयन्तः, परहितनिरताः, स्वार्थं परार्थाय परित्यजन्तः,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

जनसेवा मीश्वरसेवां चिन्तयन्तः समस्तं भूमण्डलं स्वकुटुम्बं मन्यन्ते, तेषां सेवार्थश्च सदैव उद्युक्ताः तिष्ठन्ति। ये खलु एवं चिन्तयन्ति कुर्वन्ति च तदनुकूलं ते एव उदारचरिताः कथ्यन्ते। उदारचरितानामेव वसुमतीयं तेषां कुटुम्बं भवतीति।

५५

बुभुक्षितः किन्न करोति पापम्

यदा लोके कोऽपि पुण्यस्य पापस्य च मूलकारणं मार्गयितुं प्रवर्तते तदा स सन्तुष्टि मेव पुण्यस्य, बुभुक्षामेव पापस्य च निदानमव धारयति। यतः पूर्णसन्तुष्ट एव जनो दानाध्ययनयज्ञादिषु पुण्यप्रदेषु कार्येषु प्रवर्तते, बुभुक्षापीडित एव चौर्यादिषु पापप्रदेषु कार्येषु प्रवर्तते। एवं बुभुक्षैवास्ति मूलकारणं सर्वविधस्य घोरस्य पापस्य। नानाविधानि पापकर्माणि लोके दृष्टिपथमायान्ति, श्रूयन्ते च, एषु सर्वेष्वेव बुभुक्षैव येन केनापि रूपेण ओतप्रोता दृश्यते। बुभुक्षाविवशो नास्ति तादृक् कुकृत्यं यन्न करोति। बुभुक्षापरिवाधितो जनो यदा नानुपश्यति अन्येन केनापि विधिसम्मतेन कार्येण क्षुन्निवृत्ति तदा स उदरदरीभरणाय घोरातिघोरेष्वपि पापकर्मषु निर्भयः प्रवर्तते, न तदा स पापफलं चिन्तयति, न करणीयमकरणीयम्वा कर्म विचारयति, नापि विधिनियमानप्यपेक्षते।

बुभुक्षेयम्भवति नैकविधा, कदाचिदन्नबुभुक्षा, कदाचिन्मानबुभुक्षा, कदाचिदधिकारबुभुक्षा, कदाचित्कामबुभुक्षा एवं बुभुक्षापिशाचिनीयं भवति नानारूपिणी। परं तथापि कदापीयं परितृप्तिन्नायाति। यदिकदाचिदेषा एकरूपेण शान्ता भवति, प्रवर्धते द्वितीयेन रूपेण, द्वितीया-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

न्तरं तृतीयेन रूपेणेत्थं सदैवोत्तरोत्तरमियं वृद्धिमेव याति न कदाप्यन्तं गच्छति, अतएव बुभुक्षैव संसारतरो मूलं मन्यते। इयमेतादृशी बलवती यदेतया परिगतो जनो अगम्यमपि गम्यं, दुःसाध्यमपि साध्यं, त्याज्यमपि परिग्रहणीयं, अभक्ष्यमपि भक्ष्यं, दुर्लभ्यमपि लभ्यं, घृणास्पदमपि करणीयं अन्याय्यमपि न्यायसम्मतं, दुष्करमपि सुकरं, अकर्मापि कर्म मन्यते। एवं बुभुक्षावेगास्थिरचित्तो जनो धर्मस्याधर्मस्य पापस्य पुण्यस्य वा विचारं विहाय शमयितुमेनां फलाफलविचाराचारपरिवर्जितः सन् यत्किमपि समक्षमायाति तदेव भुङ्क्ते तदेव स्वीकरोति च। यथा वारिदवारिवर्धिता तटिनी न केवलं तटानि अपितु तटस्थान् विशालान् तरुनपि समूलनाशं नाशयति सेतुश्चापि प्रभञ्जयति तथैव सुदुर्निवार्यो बुभुक्षावेगो धीरस्यापि धैर्य सेतुं समुत्पाटयति विवशीकरोति च जनं क्षुन्निवृत्तये येन केनापि सरलेन विकटेन दण्डचेन निन्द्येन वा मार्गेण प्रयातुम्, यत्कीदृगपि मानापमानजनकं वा उचित मनुचितं वा साधनमवलम्बितुञ्च। प्रत्यक्षं प्रज्ज्वलितां बुभुक्षाज्वालामसहनीयां दुर्दमनीयां निरीक्षमाणो बुभुक्षितो न चिन्तयति कालान्तरभाविदुःखं अदृष्टञ्च पापाचारफलम्। यथाग्निना दह्यमाने गृहे आत्मत्राणाय विचेष्टचमानो विभ्रान्तचित्तो जनः पापं पुण्यञ्चोपेक्ष्य प्रियं पुत्रं प्राणप्रियां प्रणयिनीमपि प्रविहाय येन केनाप्यपथेनापि निर्गच्छति, तथैव बुभुक्षया दह्यमानायामुदरदर्यां दुर्विसह्यां दन्दह्यमानां मुदरज्वलनज्वालां शमयितुं यत्किमपि झटिति लब्धं साधनमेवावलम्बते, परद्रव्यमपहरति, परान्नं भुङ्क्ते, अमेध्यम् उच्छिष्टं दुर्गन्धियुक्तं पथि विक्षिप्तं वान्नं मत्ति, असत्यं भाषते, कपटमाचरति, अहिंस्यानपि पूज्यतमानपि प्रियानपि समुपास्यानपि श्रद्धेयानपि हिनस्ति, किं किन्न करोति, को जानाति ? वङ्गप्रान्तेऽन्नाभावकालेऽस्य पापस्योदरार्थं तत्रत्यै र्बुभुक्षापरिपीडितै र्दीनजनैः सस्नेहं संलालिता बुभुक्षया क्रन्दन्तः शिशवः स्वयमेव व्यापादिता, विषदानेन वा मारिताः, तण्डुलप्रसृतिमात्रविनिमये वा विक्रीताः, बुभुक्षिताभिः सतीभिश्च

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पणकमूल्येन सतीत्वं विक्रीतम्। वुभुक्षापीडितो विश्वामित्रः शुनो मांसमाहरत् इति श्रूयते। अहो कष्टात्कष्टतरं क्षुधा।

यथान्नबुभुक्षापीडितो नरो महन्ति पापान्याचरति तथैव मानबुभुक्षापरिगतोऽपि। महाभारताख्यमहायुद्धस्य वीजं मानबुभुक्षैवासीत्। "अन्धस्यान्ध एव जात" इति द्रौपदीवचनेनापमानितो दुर्योधनो मानबुभुक्षाशमनायैव महाभारतं प्रारभत। अद्यत्वेऽपि सहस्रशो जनाः तथाकथितवेषभूषालौकिकप्रतिष्ठात्मकं मानमभिरक्षितु मुत्कोच–ग्रहणादिकं दुष्कृत्यं कुर्वन्तो दृश्यन्ते। मानबुभुक्षाप्रशान्तये निकृष्टान्निकृष्टतरादपि कुकृत्यान्न विरमन्ति। परं मानबुभुक्षातोऽपि घोरतमा दुष्कृतपरिधानपरिवेष्टिता प्रलयङ्करी दृग्गोचरता मुपैति अधिकारबुभुक्षा। अन्धीकरोतीयमधिकारलोलुपानामुच्चपदाभिलाषिणामक्षीणि, अधः क्षिपतीयञ्जनान्नैकविधकुकृत्यकूपम्, क्षणेनैव च शस्यश्यामलां धरिणीमिमां रुधिराक्तां विधत्ते। अधिकारबुभुक्षयानया कैकेयी स्वपत्युर्दशरथस्य प्राणापघातिनी समभवत्, कंसोऽधिकारलिप्सया स्वजनकमपि कारागारे निक्षिप्तवान्, अनया चैवाधिकारबुभुक्षया यवनपतिरवरङ्गजीवः स्वपितरं कारागृहे विनिक्षिप्य प्रियान् भ्रातृंश्चा वधूय राज्यसिंहासनमलञ्चकार। अधिकारभावनयानयैवाद्यत्वे समस्तेऽपि भूमण्डले जनानां समराग्नावाहुतयो दीयन्ते। युद्धविभीषिकया सर्व एव देशाः संत्रस्ता निरीक्ष्यन्ते। अहो दुरन्ता दुष्कृतकारिणी दुर्दमनीयेयमधिकारबुभुक्षा। किं किन्नानया कारितम्, किं किन्न कारयति, किं किञ्च न कारयिष्यति।

कामबुभुक्षायाः कृत्यन्तु वर्णनातीतं, सर्वे वयमस्या अकाण्डताण्डवं रात्रिन्दिव मध्यक्षीकुर्मः। कामबुभुक्षया परिपीडित मद्य समस्तं जगद् दृश्यते। अतः सत्यमेवोच्यतेः—

बुभुक्षितः किन्न करोति पापं, क्षीणा नरा निष्करुणा भवन्ति।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

५६

इयमुदरदरी दुरन्तपूरा, यदि न भवेदभिमानभङ्गभूमिः

विचित्र चर्चार्चिते विलक्षणगतिमतीह जगति जनजीवनयात्रा-साफल्याय स्वाभिमान एवास्ति सर्वोत्कृष्टमवलम्बनम् । स्वाभिमानो नाम द्विप्रकारको दृश्यते लोके । एकः 'अहमस्मि सर्वज्ञः, ईश्वरोऽहमहं भोगी, दाता हर्ता स्वयं प्रभुः, यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्ये, कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया' इत्याकारकोऽहङ्कारपदवाच्यः स्वाभिमानः । द्वितीय-स्तु "अहमस्मि ईश्वरेण समुत्पादितः, मह्यं हस्तपादादीन्द्रियाणि सबलानि स्वस्वविषयग्रहणसमर्थानि परमात्मना दत्तानि, एतैरेव तद-नुग्रहेण स्वेष्टसाधनाय प्रयतमानोऽह मसाध्यमपि साधयितुं क्षमः, दुर्ग-म्यमपि गन्तुं, दुष्प्राप्यमपि प्राप्तुं, अलभ्यमपि लब्धुं प्रभवामि" इत्या-कारकः स्वाभिमानः । द्वितीयेनैव स्वाभिमानेन, न तु पूर्वोक्तप्रकारकेण अहङ्कारेण, जगति कार्यप्रवृत्तिरवलोक्यते । एतादृशं स्वाभिमानं विना न कोऽपि पदात्पदमपि गन्तुं प्रभवति, जीवनयात्रासाफल्यस्य तु का कथा । निरभिमानी तृणमिव सर्वैः सदा विदल्यते, न भवति कोऽपि तस्य सहायको, सर्वैरप्ययं तिरस्क्रियते, विनिन्द्यते सज्जनैः, परिहीयते बन्धुभिः, उत्सृज्यते गुणवद्भिः, नाद्रियते चापि स्त्रीभिरपि बालैश्च । निःसत्त्वः सर्वत्रैव पराभूयते । यस्य नास्ति स्वगौरवं, स्वदे-शस्य चाभिमानः, न स मानवः पशुरेव केवलं । स वृथा जीवति ।

न केवलं मानवेषु, पशुषु पक्षिष्वप्ययं स्वाभिमानः परिलक्ष्यते । स्वपराक्रमेणैव पशून् निहत्य भक्षयिष्यामि न परदत्तमांसेन न घासेन नान्नेन वा जीवनवृत्तिं विधास्यामीत्याकारकं स्वाभिमानं यदि मृगरा-जोऽपि परित्यजेत् तर्हि बलवानपि स क्षुद्रजन्तुभिः शृगालादिभिरपि पराभूयेत । स्वप्रकृष्टवेगशालिपादनिक्षेपैः दूरमहं यास्यामि, नाहं व्याधवश्यो भविष्यामीत्याकारकं स्वाभिमानं यदि ईशदत्तवेगगति-मानपि मृगो विजहाति तर्हि व्याधशरशरव्यतामुपगतो मृत्युमुखं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पश्येत् । पक्षिणोऽपि गगनोत्पतनगत्यात्मकं स्वाभिमानं विस्मृत्य वृक्ष-शाखानिलीनास्तिष्ठेयुस्तर्हि शकुनिलुब्धकजालावद्धा मृत्यु मवाप्नुयुः । एवं नात्र संशयः यत् स्वाभिमान एवास्ति सर्वस्थितिमूलम् ।

परमिह जगति विधात्रा न कोऽपि भाव ईदृशो विहितः, यो हि स्थायी अभङ्गः चिरन्तनो वा स्यात्, सर्वे भावाः क्षयान्ताः, सर्वेषामेव भावानां भङ्गाय तेन शक्तिमता परमात्मना नैके हेतवो नियतीकृताः । एतदनुसारमेव एवम्भूतस्य महत्वशालिनः स्वाभिमानस्यापि भङ्गाय तेन दुरन्ता उदरदरी निरमायि । एतां पूरयितुमेव अहर्दिवं प्रयतमाना जनाः स्वाभिमानात् प्रच्युता भवन्ति । भ्रष्टस्वाभिमानास्ते नैकरुपान् दुर्दशाविशेषान् सहन्ते । त्रोटितविषदन्ता भुजङ्गा इव, मदविवर्जिता गजराजा इव, पक्षविहीनाः पक्षिण इव निरभिमानिनो जनाः सर्वत्र अपमानिता भवन्ति । जीवन्तोऽपि ते मृता एव गण्यन्ते । यदि न स्या-दियं दुरन्ता उदरदरी तर्हि कः कस्य सेवावृत्तिं स्वीकुर्यात्, अपमानञ्च सहेत । एतेनैवाभिप्रायेण केनचिद् दरिद्रेण स्वोदरपूर्तिं कर्तुं मसमर्थेन कस्यापि साहङ्कारस्य सेवकतामुपगतेन तदपमानजनकदुर्वचनश्रवण-संजातौदासीन्येन सता इदमभिहितम् :—

"इय मुदरदरी दुरन्तपूरा यदि न भवेदभिमानभङ्गभूमिः ।
कथमपि न सहे भवादृशानां कुटिलकटाक्षनिरीक्षणं जनानाम्" ॥

सत्यमिदं, ये खलु स्वाभिमानमपहाय उदरदरीभरणाय प्रयतमानाः धनिनामपि असहनशीलानां दुर्वृत्तानां जनानां सेवां स्वीकुर्वन्ति, तेषां विनापराधं कुटिलभ्रूभङ्गान् पश्यन्ति कटुवचनानि च शृण्वन्ति अथापि तान् सेवन्ते, ते पशुभ्योऽपि तृणेभ्योऽपि निकृष्टतमा वृथा जीवन्ति । एतादृशानान्तु मरणमेव शरणम् ।

इयं हि उदरदरी परमात्मना विचित्रा एव सृष्टा, या अहरहः प्रयत्नशतैरापूर्यमाणाऽपि पुनः पुनः रिक्ता भवति, रिक्ताया मस्यां न कोऽपि तावच्छान्ति लभते, भवतु नाम स योगी, ज्ञानी, तपस्वी, राजा, धनी, सामान्यजनो वा, यावन्न पुनरियमापूरिता भवेत् । अस्याः रिक्त-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

दशायां मनः परं वैकल्यमेति, मनोविक्षुब्धिकाले कुतः सुखं प्राणिनः। अतः स एतस्याः पूर्तये प्रयत्नमाचरन् यदा न साफल्यमेति तदा विवशीभूय विगर्हितवृत्तिमपि स्वीकरोति, असेव्यमपि असभ्यमपि अवन्द्यमपि वन्दते, चाटुशतैः धनिनः स्तौति, मांसमपि विक्रीणाति, किन्न तत्कुकृत्यं यन्नायं करोति । अतो निश्चीयते यदस्तीय मुदरदरी दुरन्ता अतएव अभिमानभङ्गभूमिरिति ।

५७

विद्वानेव विजानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्

यो हि भव्यम् अभव्यं करणीयम् अकरणीयं लौकिकं शास्त्रीयञ्च व्यवहारं विविच्यानुसन्धत्ते स विद्वान् कथ्यते, अयमेव यथाकालं यथास्थिति विचक्षणः, विवेकी, कलावित्, नीतिवित्, शास्त्रविद्वेति कथ्यते। अयमेव विद्वान् स्वसमयोग्यताकस्य विदुषः गुणान् वेत्ति नेतरः । अयमेव जानाति यदनेन कियता परिश्रमेण महान्त ममूल्यं समयमध्ययनेऽतिवाह्य विद्योपार्जिता, कानि कानि च शास्त्राणि दुर्वोध्यानि अहर्दिव मेकाग्रेण मनसा अधीतानि । कथं भोजनाच्छादनयोरपि चिन्तां विहाय मुनिवृत्त्या वृत्तिं कल्पयन् भूमौ शयानः, अल्पच्छदः, स्वल्पाहारी च भूत्वा ब्रह्मचर्यं सम्यक् पालयन् चिरमध्ययनं कुर्वन् शास्त्रज्ञान मर्जितवान् । अयमेव विद्वान् विजानाति के ते गुणा येऽपेक्ष्यन्ते एकस्मिन् विद्वज्जने, कथमेते गृहीतव्या विदुषा, कथमेते प्राप्यन्ते विद्वज्जनैः, को लाभो मानवजीवने गुणैरेभिः, कीदृग् वर्तते तारतम्यमेतेषु गुणेषु । अयमेव विद्वान् वेत्ति यत् समयोग्यताकोऽयं विद्वान् कियन्मात्रं वेत्ति, कियन्मात्रञ्च विस्मृतमनेन, कियन्मात्रं परित्यक्तन्नाधीतम्वा नेन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

च। विद्वज्जनस्य मूल्याङ्कन कर्तुं तस्य परिश्रमस्य समयस्य ज्ञानस्य वा मूल्य मङ्कितुं विद्वानेव क्षमते नेतरो विद्याविहीनो मूढ़ः। यथा सोढुमशक्यां प्रसवकालिकवेदनां प्रसूता स्त्री एव सम्यग् जानाति नहि वन्ध्या विजानाति, तथैव विद्वानेव विद्वज्जनश्रमं विजानाति न मूढः।

परमद्यत्वे देशस्य दौर्भाग्येन विदुषां विद्याना म्वा, दुर्भाग्यतः विदुषां परीक्षकाः, तेषां विद्यायाः, तेषां गुणानां, तेषां स्वाधीतविषय-विषयिण्या योग्यतायाः, तेषां लोकव्यवहारज्ञानस्य वा मूल्याङ्कन-कर्तारः प्रायो मूढाः तद्विषयानभिज्ञा एव संदृश्यन्ते। विचार्यन्ताम् सुधियः, किमेभि स्तद्विषयज्ञानशून्यैः तथाकथिताधिकारिभिः विद्वज्ज-नानां परीक्षा साक्षात्कारो वा भवितुमर्हति। किमेभि स्तेषां विद्वत्ता-योग्यता प्रशंसनेन विद्वज्जनाः प्रशंसापात्रं भवितु मर्हन्ति, अथवा किमेभि र्निन्दितास्ते निन्दाभाजनं भवितुमर्हन्ति न कदापीत्यहं मन्ये। किं महिषीणां पुरतो वीणावादनेन नर्तनेन गानेन वा महिष्यः प्रभा-विता भविष्यन्ति, श्रोष्यन्ति वीणावादनं, प्रशंसां करिष्यन्ति वीणा-रागस्य गानस्य वेति न कदापि। सत्य मुक्तं नीतिविदा—

गुणा गुणज्ञेषु गुणा भवन्ति,
ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः।
आस्वाद्यतोयाः प्रवहन्ति नद्यः,
समुद्रमासाद्य भवन्त्यपेयाः॥

अतो विद्वज्जनैः स्वविज्ञताप्रकटनाय विद्वांस एव विषयीकरणीयाः त एवोपगन्तव्या न मूढाः, यतस्त एव तत्परिश्रमं विजानन्ति इति।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

५८

आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्

संसारस्याद्य महासंघर्षमयी दशा विद्यते, सर्वत्र आशान्तिरेव दृग्गोचरतामुपैति। किमस्याः कारणमिति विचारे, नैके वादाः श्रूयन्ते। केचिद् विषमार्थव्यवस्थेति, केचिदहम्भावनेति, केचित्साम्प्रदायिकभावनेति, केचिज्जातिवादितेति, केचिदधिकारभावनेति वा परिकल्पयन्ति। "मुण्डे मुण्डे मति र्भिन्ना, तुण्डे तुण्डे सरस्वती" इत्युक्तिदिशा यावन्ति मुखानि तावन्ति वचनानि। परमशान्ते नैकं कारणमपि तु अनेकानि। पर मत्र कारणद्वयमेव प्रमुखम्—अहङ्कारभावः महत्त्वाकाङ्क्षा चेति।

स्वमहत्त्वाकाङ्क्षायाः पूर्तये प्रवृत्ता जनाः परान् निदर्यं निर्भयं पीडयन्ति। स्वकीयचरणेषु निपातयन्ति, निपतिताँश्च तान् साक्रोशं विदलन्ति, दण्डैः मुष्टिकाभिश्च ताडयन्ति, करदण्डैश्च दण्डयन्ति, कारागारेषु प्रक्षिपन्ति, रक्तञ्च तेषां शोषयन्ति, कांस्कान् वा न तेषु अत्याचारानाचरन्ति। महत्त्वाकाङ्क्षा हि जनानां परमसङ्कीर्ण भावना। अनया स्वपरभेदो जन्यते, अपनीयते च साम्यवादः, अपसार्य्यते च एकात्मानुभवः, प्रक्षिप्यते च समवेदना, अपाक्रियते च सहानुभूतिः, अवधूयते च सहयोगः। परं यदा दुर्मदोऽहम्भावो महत्त्वाकाङ्क्षायाः सहयोगी भवति तदा तु समस्तस्य विश्वस्य शान्तिरेव संशयग्रस्ता दुःसमाधाना च जायते। अशान्तेः संघर्षस्य च अपनयनाय यद्यपि नैके नीतिविदो नेतारः प्रयतमानाः श्रूयन्ते परं साहङ्कारा महत्त्वाकाङ्क्षा न यावदपनीयते तावद् विश्वशान्तेः संघर्षाभावस्य आशा दुराशा एव। नीतिविदां तावन्महामहत्यो विश्वशान्तियोजना अपि निष्फला एव यास्यन्ति।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

परमस्ति किं कोऽप्युपायः समस्याया अस्याः समाधानायेति जिज्ञासायामुच्यते धर्म एव एकः परमोपाय इति। धर्मशब्देनात्र न सम्प्रदायविशेषः अपितु विश्वजनीनः व्यापकश्च धर्मो, येन धार्य्यन्ते प्रजाः, विवक्षितः, यत्र संकीर्णता नास्ति नापि एकदेशिता। धर्मो हि स्वपरभेदं समूलमुन्मूलयति, एकात्मानुभूतिं समवेदनाञ्चोद् भावयति। धर्मेणानेन निरस्ते हि स्वपरभेदे सर्वं एव आत्मवत् सर्वभूतेषु वर्तिष्यन्ते। एकात्मानुभूतेः समवेदनायाश्चाभावादेवाद्य जनस्तानि दुरुक्तानि परस्मै जनाय प्रयुञ्जानो दृश्यते यानि स आत्मने नाभिवाञ्छति, परेषु तदत्याचाराचरणं कुर्वन्नपि वेदनां दुःखं वा नानुभवति यत्स आत्मने न रोचते। किमाश्चर्यमतः परं यद् योऽद्य न द्रष्टुमिच्छति आत्मनो मातुः भगिन्याः कन्याया वापमानं स एव परकीयानामासामपमानं स्वयं कुर्वन्नपि न विलज्जितो भवति। यदि धर्मेण समवेदनायाः प्रचारो भवेत्, न कोऽपि आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां समाचरिष्यति, अपि तु सः—

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः॥

इत्युक्तिदिशा वर्तिष्यते, परं धर्माचरणेनैवैतत् सम्भाव्यते, नान्यथा। यावन्नोदेति धर्मभावना तावन्नोद् भविष्यति समवेदना एकात्मानुभूति र्वा। यावन्नोदेति समवेदना तावन्नोदेष्यति स्वपरभेदाभावः। अतोऽस्माभि र्धर्माचरणेन स्वपरभेदं विनाश्य विश्वशान्त्यर्थं प्रयतनीयम्। एतदर्थं धर्मस्य निगूढतरं रहस्यमिदमप्यवधारणीयम्:—

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

५६

छात्र कर्तव्यम्

सत्यमिद मुच्यते यद् विद्यार्थिजीवनं मानवजोवनस्य प्रभातवेला । अयमेव कालः मानवस्य सर्वविधानां शारीरिकशक्तीनां मानसशक्तीनाञ्च विकासस्य । अतः छात्राणां तदभिभावकानां तदध्यापकानां तद्धितैषिणाञ्चान्येषां परमं कर्तव्यं यच्छात्राणामयं परमोपयोगी समयः वृथा न गच्छेत् । छात्राः समुपलभ्यमानै र्विविधैः साधनै, र्येषां केषाञ्चिदेतेषु निर्देशः अधो वर्तते, पूर्वोक्तशक्तीनां विकासाय प्रयत्न माचरेयुः । अभिभावकादयोऽन्येऽपि पश्येयुः यत्तेषामयं शक्तिविकासः यथावद् भवति न वा । यदा कदापि ते तेषां शक्तिविकासमार्गे बालोचितस्वभावाच्चाञ्चल्यवशाद् बुद्धिविकासाभावाद् वा गतिरोध मवगच्छेयुः तदा तेषां मार्गनिर्देशं कुर्युः, पदे-पदे च तेषां गतिविधिदर्शने सावधाना यथाकालं प्रयतमानाश्च भवेयुः । विधिनानेनैव छात्राणां सर्वविधशक्तिविकासो भविष्यति, तेषां जीवनं साफल्यं यास्यति, समयश्च वृथा न गमिष्यति । यतो हि अद्यतनीयाः छात्रा एव भाविनो नागरिका देशोन्नतिकारकाः स्वस्य परस्य च धनधान्यसमृद्धिविधायिनः सन्ति ।

"अध्ययनं परमं तपः" इत्युक्तिदिशा, यद्यपि अध्ययनमेव परमं कर्तव्यं प्रतिभाति छात्राणां, येन तेषां सर्वमुखीनो बुद्धिविकासो जायेत, अतस्तै र्मनोयोगेन पुस्तकाध्ययनेन लोकाभ्युदयकारिज्ञान मुपलब्धव्यम्, तथापि तैः सर्वोऽप्ययं कालो नाध्ययने एव नेयः, अपि तु यथासमयं नित्यनियमेन शरीरविकासोऽपि विधेयः, एतदर्थं तै र्नित्यं यथावलं व्यायामो विधातव्यः । सन्त्यनेके विधयो व्यायामाचरणस्य । विद्यालयेषु सर्वेषु प्रायः संलग्नं क्रीडाक्षेत्रं भवति । अध्ययनकालोत्तरं संध्याकाले समेत्यात्र यथारुचि यथाशक्ति विविधैः क्रीडनैः शारीरिकवलविकासो विधेयः । क्रीडनेन न केवलं शरीरवलविकासः अपितु सहपाठिभिश्छात्रैः सह आलापेन क्रीडनेन च तेषु पारस्परिकं प्रेम उदेति,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सहानुभूतिभावना जायते, सहयोगेन कार्यसाधनक्षमता उद्भवति, नैकेषां पुस्तकाध्ययनव्यतिरिक्तानां लौकिकविषयाणाञ्च ज्ञान मुत्पद्यते ।

परमेतस्य शक्तिद्वयस्यावाप्तये छात्राणां सन्ति अन्यान्यपि कर्तव्यानि । एतेषु छात्रानुशासनमेव प्रमुखम् । यद्यपि अनुशासनपालनं भवति दुष्करं तथाप्यनुशासनपालनमन्तरेण न छात्रजीवनस्योद्देश्यं पूर्णं भवति नापि कस्यचिदपि विद्यालयस्य तत्रत्याना मध्यापकाना मधिकारिणाञ्च यथावत् कर्तव्यनिर्वाहोऽपि पूर्णतया साफल्यं याति । सर्वा एव शिक्षणसंस्थाः कालानुरूपं निर्धारितैः कैश्चिन्नियमैरेव चाल्यन्ते, एतेषां नियमानां छात्रैरूपेक्षा क्रियते चेन्न सम्भवति आसां संस्थानां यथावत् सञ्चालनम् । यद्यप्यद्य पूर्वनिर्धारितेषु संस्थासञ्चालननियमेषु, छात्राणां व्यवहारनियमेषु, पाठ्यविधिषु, पाठ्यक्रमेषु, परीक्षाविधिषु च परिवर्तन मपेक्ष्यते, परिवर्तनमेवास्ति जीवनम्, समयपरिवर्तनेन सहैव नियमपरिवर्तनमपि परिस्थित्यनुकूल मावश्यकम्; तथाप्येतद्विषये नैतदपि विस्मरणीयं यत् समयः शनैश्शनैः परिवर्तते, शान्त्या परिवर्तते, प्रकृति नियमानुसारमेव परिवर्तते, न सहसैव नैवैकस्मिन्नेव दिने ।

मानवजीवने अनुशासनस्य सर्वत्रैव आवश्यकत्वम् । अस्यारम्भः छात्रजीवनादेव भवति । सर्वप्रथमं पितृभ्यामेवानुशासनशिक्षा बालकैः प्राप्यते । पितरोऽभिलषन्ति यत्तेषां बालकाः बालिकाश्चानुशासने वर्तेरन्, येन गार्हस्थ्यकर्मसु सामाजिकव्यवहारेषु विद्याधनाद्यर्जनसाधनीभूतेषु विविधेषु अन्येष्वपि कार्येषु न कापि बाधा निपतेत् । वयः प्राप्ता यदेमे बालका विद्यालयेषु अध्ययनाय प्रवेशं लभन्ते तदा तु अनुशासनस्य शिक्षणं, तन्महत्त्वं तदुपयोगित्वं वा एतै रवाप्यते गुरुजनेभ्यः ।

सत्यपि एतादृशे सुविस्तृते अनुशासनशिक्षाक्षेत्रेऽपि छात्राणामनुशासनहीनता अद्यत्वे प्रमुखसमस्या वर्तते । छात्रैः स्वयमेव एतद्विषये चिन्तनीयम् । विनानुशासनं न कोऽपि जनः देशो वा सर्वतोमुखी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

मुन्नतिं कर्तुं पारयति अतः अनुशासनस्य रक्षणं पालनञ्च सर्वेषामेव कर्तव्यम्, विशेषतया छात्रैरनुशासनपरैर्भवितव्यमिति ।

६०

आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः

विविधमुनिमानवदानवकृतानेकधर्माधर्मपापपुण्याश्रये जगतीतलेऽस्मिन् यत्र कुत्रापि दृष्टिविक्षेपं कुर्मः तत्रैव धर्मस्य, शीलस्य, आचारस्य, विनयस्य चोपदेशं शृणुमः। सर्वत्रैव "आर्जवं मुक्तिसाधकम्, विनयेन वर्तस्व, पापाय परपीडनम्, कपटाचरणं पापम्, न तितिक्षासममस्ति साधनम्, विनयाद्याति पात्रताम्" इत्येवम्विधो धर्मोपदेश एव श्रुतिपथमायाति । धर्मशास्त्राणि प्रायः "सर्वविधेष्वेव मानवेषु आर्जवेन वर्तताम्, दुष्टेष्वपि पापेष्वपि कुटिलेष्वपि च आर्जवेनैव वर्तताम्, यतो हि आर्जवेन विनयाचारेण सर्व एव वशगा भवन्ति, प्रियवचनेन आर्जवेन विनयेन च दुर्वृत्ताः कुटिला अपि कौटिल्यं परिहाय विनम्रा भवन्ति, अत आर्जवेन वर्तनमेव श्रेयस्करम्" इत्युपदिशन्ति । परं कुटिलेष्वप्यार्जवेन वर्तनस्योपदेशो न सर्वत्रत्यः, अपितु स्थितिविशेषे एव प्रयोक्तव्यः, सर्वत्रैव अस्य प्रयोगान्न लोकाभ्युदयसिद्धिः ।

आर्जवं हि नाम सत्वप्रधानो गुणः, सात्विकस्वभावानां मुनीनामृषीणामेव हृत्सु स्थानं लभते, नहि त्रिगुणात्मकेषु सर्वेष्वेव मानवेषु । ऋषय एव ऋजवो भवन्ति, अतः आर्जवं तेषु एव भवति नहि सर्वेषु रजोगुणप्रधानेषु तमोगुणप्रधानेषु वा पुरुषेषु । अत आर्जवं नाम सत्वप्रधानैः ऋषिभिरेव अन्यैर्वा महापुरुषैरेव वा प्रयोक्तव्यम्, तेष्वेवेदं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रयोक्तव्यं लोकैः, नहि सर्वेषु, सर्वैः, सर्वत्रैव, सर्वदैव अस्य प्रयोगे औचित्यम् ।

दृश्यन्ते हि लोके साधुष्वपि कुटिलाचरणं चरन्तो जनाः । एते दुर्जनाः स्वार्थवशेन साधूनपि कौटिल्येन प्रतार्य्यं स्वकार्यं साधयन्ति । कियन्तः कपटमुनिवेषधारिणो जनाः ऋजुप्रकृतिकान् धार्मिकान् पुरुषान् वञ्चनया दुःखोदधौ निपातयन्ति, स्वाभीष्टसाधनान्निवारयन्ति । कपटपटुना शकुनिना दुर्योधनसाहाय्येन साधुस्वभावो युधिष्ठिरो वञ्चितः, द्यूतकूपे निपात्य अशस्त्रघातं हतः । अतिसरलप्रकृतिकः परमधार्मिको दानी सत्यवादी महाराजो हरिश्चन्द्रः परातिसन्धानकुशलेन कुलक्षणेन विश्वामित्रेण प्रवञ्चनाविषयः कृतः तदनु चाण्डालहस्ते विक्रायितः, पुत्रवती तत्पत्नी च तिरस्क्रियां प्रापिता । गुरुभक्तिनतः सरलस्वभावः एकलव्यः परवञ्चनाप्रवीणेन द्रोणाचार्येण दक्षिणहस्ताङ्गुष्ठकर्तनदक्षिणया प्रतारितः । दमयन्त्याः स्वयम्वरे वरणाय गच्छन् महाराजो नलः मार्गे एव चतुर्भिरन्यैः देवैः सहागत्य परप्रतारणापटुना पाकशासनेन दूतकर्मणि नियोजितः । सीतया सह वनमधिवसन् श्रीरामचन्द्रो दुर्मदेन राक्षसराजेन रावणेन प्रहितेन कपटमृगरूपधारिणा मारीचेन पञ्चवटीतो दूरं नीतः, सीतादेव्यामपि भ्रमः समुत्पादितः । इत्यादयो दृष्टान्ताः प्रमाणयन्ति यदार्जववन्तः सत्वप्रधाना धार्मिकाः पुरुषाः कुटिलैः प्रवञ्चनापटुभि र्जनैः प्रातार्य्यन्ते दूष्यन्ते च । कुत्रास्ति आर्जवस्य महत्त्वम् ? आर्जवमकिञ्चित्करमेव लोकव्यवहारेषु । आर्जवं हि स्वर्गीयो गुणः तत्रैव निवसति, नहि लोकव्यवहारे एतस्योपयोगित्वम् । आर्जवं हि दुर्बलानां नीतिः, न तु अभ्युदयकामानां लौकिकोन्नतिसाधकानां सबलानां जनानाम् ।

यदा साधुष्वपि जनाः क्वचित्कौटिल्येन, न तु आर्जवेन वर्तन्ते तदा कथं कुटिलेषु आर्जवं प्रशस्यं स्यात् ? वस्तुतः कुटिलेषु तु सर्वदैव कौटिल्ये नैव वर्तनीयम्, अयमेव धर्मः अयमेव न्ययोचितमार्गः अयमेव

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

च महापुरुषाणमपि सन्देशः। कुटिलाः कौटिल्येनैव जेया न तु सारल्येन, आर्जवेन, विनम्रभावेन वा। यथाह महाकविः भारविः—

"व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं, भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः"

कपटपरेषु जनेषु कदाचनापि कथञ्चनापि न सारल्येन आर्जवेन वा अपि तु केवलेन कौटिल्येनैव वर्तितव्य मिति सिद्धान्तं भगवान् आनन्दकन्दः श्रीकृष्णचन्द्रः अर्जुनस्य साहाय्यं कुर्वन् महाभारताख्ये धर्मयुद्धे सम्यक् सफलयाञ्चकार। कुटिलस्य दुष्टजनसंसर्गिणः जयद्रथस्य वधाय स कुटिलनीत्या प्रथमं सूर्यस्याच्छादनं कृतवान् तदनु तस्मिन् सम्मुखमागते स सूर्यावरणनिवारणेन तस्य वधं कारितवान् एवं स कुटिलस्य दुर्योधनस्य संगत्या कुटिलाचारपरायणान् भीष्मद्रोणकर्णजरासन्धादीनपि प्रातारयत्। एते दृष्टान्ताः साधयन्ति यत् कापटिकाः कपटव्यवहारेणैव जेतव्याः, कुटिलेषु कुटिलाचरणं नहि दोषाय भवति न चापि पापाय। सारल्येन यदा कुटिला न सन्मार्गे प्रवर्तयितुं शक्या भवन्ति तदा श्रीकृष्णसदृशा महापुरुषा अपि तेषु कौटिल्येन वर्तनमुप दिशन्ति। दण्ड्या दण्डेन दण्डनीयाः। विषस्य विषमेवौषधं भवति। ज्वरसन्तापो नहि शाम्यति शीतलवारिसिञ्चनेन अपि तु तीक्ष्णकट्वौषधसेवनेन। सत्यमिद मुच्यते 'शठे शाठ्यं समाचरेत्; नहि शठः आर्जवेन शठत्वं त्यक्ष्यति, यदि त्यक्ष्यति तर्हि शाठ्याचरणेनैव, अतः शठे शाठ्याचरणमेव नीतिः।

धार्मिकजनाः कथयन्ति यत्कुटिलाचारेण भवतु नाम लोकाभ्युदयसिद्धिः, परमेतादृशेनाचरणेन निःश्रेयसाधिगमस्तु नश्यत्येव, अतो निःश्रेयसकामो न शठेष्वपि शाठ्यमाचरेत् अपितु आर्जवेन वर्तेत" परं शठेषु शाठ्याचारादृते नान्यो मार्गः, तेषां शाठ्यापहाराय, अतः एतदर्थं तेषु कुटिलाचार एव धर्मः। यदि भगवता श्रीकृष्णेन सारल्येन साधुनीत्या पुनः पुन रवबोधितो दुर्योधनः पाण्डवैः सह सन्धि मकरिष्यत् तर्हि महाभारतसमरे असंख्येयजनैः सह कुरुवंशविनाशो नाभवि-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

ष्यत् । कुटिलाचारः स्वयन्तु विनश्यत्येव अन्येषामपि विनाशकारको भवति, अतः तस्य कौटिल्येन वध एव श्रेयस्करः । एवम्भूतेन श्रेयस्करेण धर्माचरणेन निःश्रेयसाधिगमे का वाधा ? एतदेवाभिलक्ष्य नीतिविद्भिरभिहितम् :—

"पापाचारो मायया वाधितव्यः,
साध्वाचारः साधुनैवाभ्युपेयः ।

अतो नास्त्यत्र कश्चनापि संशीतिलेशः—

"आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः" इति ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

अभ्यासार्थ निबन्ध विषय

१—सर्वे गुणाः काञ्चन माश्रयन्ते ।
२—शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् ।
३—कृशे कस्यास्ति सौहृदम् ।
४—सन्तोषः परमं सुखम् ।
५—कालो हि दुरतिक्रमः ।
६—रामायणं महाकाव्यं शिवं सत्यं च सुन्दरम् ।
७—नाट्यं भिन्नरुचे र्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम् ।
८—अहो दुरन्ता वलवद्विरोधिता ।
९—क्षमा खड्‌गः करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति ।
१०—नास्ति सत्यात् परो धर्मः ।
११—दारुणा हि महाहवा भवन्ति ।
१२—दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी ।
१३—सेवा श्ववृत्ति राख्याता तस्मात्तां परिवर्ज़येत् ।
१४—न बन्धुमध्ये धनहीन जीवितम् ।
१५—कणशः क्षणशश्चैव विद्यामर्थं च साधयेत् ।
१६—क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोप करणे ।
१७—गतानुगतिका लोका न लोकाः स्वार्थदर्शिनः ।
१८—संहतिः कार्यसाधिका ।
१९—शठे शाठ्यं समाचरेत् ।
२०—न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत् ।
२१—यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः ।
२२—सत्सङ्गजानि निधनान्यपि तारयन्ति ।
२३—किं-किं न साधयति कल्पलतेव विद्या ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२४—न कूपखननं युक्तं प्रदीप्ते वह्निना गृहे ।
२५—हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।
२६—परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम् ।
२७—न खलु वहि रुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते ।
२८—संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति ।
२९—न तितिक्षासममस्ति साधनम् ।
३०—अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति ।
३१—वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा ।
३२—न प्राणान्ते प्रकृतिविकृति र्जायते ह्युत्तमानाम् ।
३३—न महानिच्छिति भूतिमन्यतः ।
३४—काव्येषु नाटकं रम्यं नाटकेषु शकुन्तला ।
३५—भूयोऽपि सिक्तः पयसा घृतेन न निम्बवृक्षो मधुरत्वमेति ।
३६—प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः ।
३७—प्रत्यासन्नविपत्तिमूढमनसां प्रायो मतिः क्षीयते ।
३८—सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तः करणप्रवृत्तयः ।
३९—लोके गुरुत्वं विपरीततां वा स्वचेष्टितान्येव नरं नयन्ति ।
४०—सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्मा ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।
४१—स जातो येन जातेन याति देशः समुन्नतिम् ।
४२—वृत्तं यत्नेन संरक्षेत् वित्तमेति च याति च ।
४३—यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
४४—मम सुप्रियं पुस्तकम् ।
४५—वैज्ञानिकाविष्कारा वरदानमभिशापो वा ।
४६—क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते ।
४७—पण्डितोऽपि वरं शत्रु र्न मूर्खो हित कारकः ।
४८—आधुनिक शिक्षा पद्धतिः ।
४९—भगवान् शंकराचार्यः ।
५०—अध्ययनं परमं तपः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

सुभाषितानि

१. पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम् ।
मूढैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंज्ञा विधीयते ।।

२. लौकिकानां हि साधूनामर्थं वागनुवर्तते ।
ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति ।।

३. नागुणी गुणिनं वेत्ति गुणीं गुणिषु मत्सरी ।
गुणी च गुणरागी च विरलः सरलो जनः ।।

४. उदेति सविता ताम्रस्ताम्र एवास्तमेति च ।
सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेक रूपता ।।

५. उपकारिषु यः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः ।
अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते ।।

६. सुजनो न याति वैरं परहितनिरतो विनाशकालेऽपि ।
छेदेऽपि चन्दनतरुः सुरभयति मुखं कुठारस्य ।।

७. शरदि न वर्षति गर्जति वर्षति वर्षासु निःस्वनो मेघः ।
नीचो वदति न कुरुते न वदति सुजनः करोत्येव ।।

८. छिन्नोऽपि रोहति तरुश्चन्द्रः क्षीणोऽपि वर्धते लोके ।
इति विमृशन्तः सन्तः सन्तप्यन्ते न ते विपदा ।।

९. सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ।
मृजया रक्ष्यते रूपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते ।।

१०. संरोहति शरैर्विद्धं वनं परशुना हतम् ।
वाचा दुरुक्तं वीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम् ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

११. चलन्ति गिरयः कामं युगान्तपवनाहताः ।
कृच्छ्रेऽपि न चलत्येव धीराणां निश्चलं मनः ॥

१२. पतितोऽपि राहुवदने तरणि र्बोधयति पद्मषण्डानि ।
जनयन्ति हि प्रकाशं दीपशिखाः स्वाङ्गदाहेन ॥

१३. उदयति यदि भानुः पश्चिमे दिग्विभागे,
प्रचलति यदि मेरुः शीततां याति वह्निः ।
विकसति यदि पद्मं पर्वताग्रे शिलायां,
न भवति पुनरुक्तं भाषितं सज्जनानाम् ॥

१४. विदुषां वदनाद्वाचः सहसा यान्ति नो बहिः ।
याताश्चेन्न पराञ्चन्ति द्विरदानां रदा इव ॥

१५. मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा,
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।
परगुण परमाणून्पर्वतीकृत्य नियं,
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ॥

१६. घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनं चारुगन्धं,
छिन्नं छिन्नं पुनरपि पुनः स्वादु चैवेक्षुदण्डम् ।
दग्धं दग्धं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्तवर्णं,
न प्राणान्ते प्रकृतिविकृति र्जायते चोत्तमानाम् ॥

१७. विद्या विवादाय धनं मदाय शक्तिः परेषां परिपीडनाय ।
खलस्य साधो विपरीतमेतद् ज्ञानाय दानाय च रक्षणाय ॥

१८. स्वयं महेशः श्वशुरो नगेशः सखा धनेशस्तनयो गणेशः ।
तथापि भिक्षाटनमेव शम्भो र्बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा ॥

१९. सीदन्ति सन्तो विलसन्त्यसन्तः पुत्रा म्रियन्ते जनकश्चिरायुः ।
परेषु मैत्री स्वजनेषु वैरं पश्यन्तु लोकाः कलिकौतुकानि ॥

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

२०. श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन दानेन पाणि र्न तु कङ्कणेन ।
विभाति कायः करुणापराणां परोपकारेण न तु चन्दनेन ॥

२१. क्षारं जलं वारिमुचः पिबन्ति तदेव कृत्वा मधुरं वमन्ति ।
सन्तस्तथा दुर्जनदुर्वचांसि पीत्वा च सूक्तानि समुद्गिरन्ति ॥

२२. किं मधुना किं विधुना किं सुधया किं वसुधयाऽखिलया ।
यदि हृदयहारि चरितः पुरुषः पुनरेति नयनयोरयनम् ॥

२३. कल्पद्रुमः कल्पितमेव सूते सा कामधुक् कामितमेव दोग्धि ।
चिन्तामणिश्चिन्तितमेव दत्ते सतां तु सङ्गः सकलं प्रसूते ॥

२४. निरक्षरे वीक्ष्य महाधनत्वं विद्याऽनवद्या विदुषा न हेया ।
रत्नावतंसाः कुलटाः समीक्ष्य किमार्यनार्यः कुलटा भवन्ति ॥

२५. वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातुमर्हति ॥

२६. उदीरितोऽर्थः पशुनाऽपि गृह्यते हयाश्च नागाश्च वहन्त्यदेशिताः।
अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः परेङ्गितज्ञानफला हि बुद्धयः ॥

२७. स्वायत्तमेकान्त गुणं विधात्रा विनिर्मितं छादनमज्ञतायाः ।
विशेषतः सर्वविदां समाजे विभूषणं मौनमपण्डितानाम् ॥

२८. रात्रि र्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं ।
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः ॥
इत्थं विचिन्तयति कोषगते द्विरेफे ।
हा हन्त-हन्त नलिनीं गज उज्जहार ॥

२९. अघटित घटितं घटयति सुघटित घटितानि दुर्घटीकुरुते ।
विधिरेव तानि घटयति यानि पुमान्नैव चिन्तयति ॥

३०. क्वचित्पृथ्वीशय्यः क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनः
क्वचिच्छाकाहारः क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो,
मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम् ।।

३१. शिरः शार्वं स्वर्गात्पशुपति शिरस्तः क्षितिधरं,
महीध्रादुत्तुङ्गादवनिमवनेश्चापि जलधिम् ।
अथो गङ्गा सेयं पदमुपगता स्तोकमथवा,
विवेक भ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ।।

३२. अस्ति यद्यपि सर्वत्र नीरं नीरजमण्डितम् ।
रमते न मरालस्य मानसं मानसं विना ।।

३३. भद्रं भद्रं कृतं मौनं कोकिलै र्जलदागमे ।
वक्तारो दर्दु रा यत्र तत्र मौनं हि शोभते ।।

३४. सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः ।
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम् ।।

३५. यस्मिन्यथा वर्तते यो मनुष्य,
स्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः ।
मायाचारो मायया बाधितव्यः,
साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः ।।

३६. सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ।।

३७. कियती पञ्चसहस्री कियती लक्षाऽथ कोटिरपि कियती ।
औदार्योन्नतमनसां रत्नवती वसुमती कियती ।।

३८. अलातं तुन्दकस्येव मुहूर्त्तमपि हि ज्वल ।
मा तुषाग्निरिवानर्चिर्धूमायस्व जिजीविषुः ।।
मुहूर्तं ज्वलितं श्रेयो न च धूमायितं चिरम् ।।

३९. गुरोरप्य वलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथ प्रतिपन्नस्य न्याय्यं भवति शासनम् ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

४०. शरदम्बुधरच्छायागत्वर्यो यौवनश्रियः ।
आपातरम्या विषयाः पर्यन्त परितापिनः ।।

४१. यदि सन्ति गुणाः पुंसां विकसन्त्येव ते स्वयम् ।
न हि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते ।।

४२. आदानस्य प्रदानस्य कर्त्तव्यस्य च कर्मणः ।
क्षिप्रमक्रियमाणस्य कालः पिबति तद्रसम् ।।

४३. सन्तोषस्त्रिषु कर्त्तव्यः स्वदारे भोजने धने ।
त्रिषु चैव न कर्त्तव्यो दाने तपसि पाठने ।।

४४. यदीच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा ।
परापवादसस्येभ्यो गां चरन्तीं निवारय ।।

४५. उद्घाटित नवद्वारे पञ्जरे विहगोऽनिलः ।
यत्तिष्ठति तदाश्चर्यं प्रयाणे विस्मयः कुतः ।।

४६. काष्ठादग्नि र्जायते मथ्यमानाद्
भूमिस्तोयं खन्यमाना ददाति ।
सोत्साहानां नास्त्यसाध्यं नराणां,
मार्गारब्धाः सर्वयत्नाः फलन्ति ।।

४७. किमिष्टमन्नं खरशूकराणां किं रत्नहारो मृगपक्षिणां च ।
अन्धस्य दीपो वधिरस्य गीतं मूर्खस्य किं शास्त्रकथाप्रसङ्गः ।।

४८. विकृतिं नैव गच्छन्ति सङ्गदोषेण साधवः ।
आवेष्टितं महासर्पैश्चन्दनं न विषायते ।।

४९. सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ।।

५०. प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः ।
किं नु मे पशुभिस्तुल्यं किं नु सत्पुरुषैरिति ।।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

५१. सुलभा रम्यता लोके दुर्लभं हि गुणार्जनम् ।
५२. विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तयः ।
५३. को दैवशप्तो हि वृणीत युद्धम् ।
५४. परप्रयुक्तः पुरुषो विचेष्टते ।
५५. निर्बन्धो हि दारूणः ।
५६. न खलु धीमतां कश्चिदविषयो नाम ।
५७. अतिस्नेहः पापशङ्की ।
५८. प्रत्युत्पन्नमति स्त्रैणम् ।
५९. निसर्गनिपुणाः स्त्रियः ।
६०. स्निग्धजनसंविभक्तं हि दुःखं सह्यवेदनं भवति ।
६१. भुजे वीर्यं निवसति न वाचि ।
६२. अवज्ञासोदर्यं दारिद्रयम् ।
६३. न ह्याकृतिः सुसदृशं विजहाति वृत्तम् ।
६४. सुखमुपदिश्यते परस्य ।
६५. दुःखं न्यासस्य रक्षणम् ।
६६. सर्वः कान्तमात्मीयं पश्यति ।
६७. गुर्वपि विरहदुःखमाशाबन्धः साहयति ।
६८. जितक्रोधेन सर्वं हि जगदेतद्विजीयते ।
६९. अनिर्वेदः श्रियो मूलं लाभस्य च शुभस्य च ।
७०. अर्थज्येष्ठा हि राजानः ।
७१. न हि निम्बात्स्रवेत्क्षौद्रम् ।
७२. दुर्लभं हि सदा सुखम् ।
७३. न सुखाल्लभते सुखम् ।
७४. परेतकल्पा हि गतायुषो नरा हितं न गृह्णन्ति सुहृद्भिरीरितम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

७५. मर्कटस्य सुरापानं ततो वृश्चिकदंशनम् ।
७६. सर्वं दुःखं विवेकिनः ।
७७. न शत्रोः प्रत्ययं गच्छेत् ।
७८. आधिं प्राप्तो यो न मुह्येत्स धीरः ।
७९. यथातथं वक्ति सभासु विद्वान् ।
८०. नये च शौर्ये च वसन्ति सम्पदः ।
८१. सर्वेषामेव दानानां विद्यादानं विशिष्यते ।
८२. आचारः प्रथमो धर्मः ।
८३. अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति ।
८४. अर्धो घटो घोषमुपैति नूनम् ।
८५. आज्ञा गुरूणां ह्यविचारणीया ।
८६. मितं च सारं च वचो हि, वाग्मिता ।
८७. मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।
८८. नीचो वदति न कुरुते, वदति न साधुः करोत्येव ।
८९. मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः ।
९०. मनो हि जन्मान्तरसङ्गतिज्ञम् ।
९१. आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव ।
९२. मौनं स्वीकारलक्षणम् ।
९३. सतां साप्तपदं मैत्रम् ।
९४. विनाशकाले विपरीतबुद्धिः ।
९५. स्वधर्मे निधनं श्रेयः ।
९६. सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
९७. प्रत्यक्षं यत्तदातिष्ठ परोक्षं पृष्ठतः कुरु ।
९८. परेतकल्पा हि गतायुषो नरा—हितं न गृह्णन्ति सुहृद्भिरीरितम् ।
९९. पूर्वे वयसि तत्कुर्याद्येन वृद्धः सुखं वसेत् ।
१००. क्षमावान्निरमर्षश्च नैव स्त्री न पुनः पुमान् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

निबन्ध विषयक आवश्यक निर्देश

निबन्ध लिखना आरम्भ करने के पूर्व अल्पज्ञ छात्रों के लिए इन अधोनिर्दिष्ट सामान्य एवं व्याकरण सम्बन्धी निर्देशों पर ध्यान रखना आवश्यक है।

(१) संस्कृत निबन्धों में विषय विवेचन से भी अधिक आवश्यक है, भाषा शुद्धि। संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से, किसी भी रूप में अशुद्ध वाक्य, भावपूर्ण एवं विषयानुसारी होते हुए भी, अशुद्ध ही कहा जाता है और विफलता का ही सूचक होता है, अतः भाषा शुद्धि पर ध्यान रखना अनिवार्य है।

(२) केवल, समासान्तर्गत पदों में, क्रिया पदान्वित उपसर्गों में तथा एक पद में ही सन्धि करना आवश्यक है, अन्यत्र वाक्यों में सन्धि करना आवश्यक नहीं। अतः जब तक सन्धि-नियमों का अच्छा अभ्यास न हो तब तक सन्धि-प्रयोग ही नहीं करना चाहिए। जिन शब्दों के बीच सन्धि के विषय में कोई सन्देह न हो उन्हीं में सन्धि करनी चाहिए, शेष में नहीं, सन्धि करना कोई अनिवार्य नियम नहीं है।

(३) दो या दो से अधिक पदों के बीच समास करना भी अनिवार्य नहीं है जब तक समास विधि का अच्छा निःसन्देहात्मक परिज्ञान न हो, तब तक शब्दों को अलग-अलग ही लिखना चाहिए, या जिन शब्दों के बीच समास के विषय में सन्देह नहीं है, वहाँ समास करना चाहिए। समासान्तार्गत शब्दों के बीच सन्धि करना अनिवार्य है।

(४) संस्कृत निबन्धों में कारकों के प्रयोग पर ध्यान रखना परमावश्यक है। किस अर्थ में, किस शब्द के योग में किस विभक्ति का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रयोग किया जाय यह जानना आवश्यक है। कुछ शब्दों में तो हिन्दी के, ने, को, का, में आदि कारक चिह्नों के अनुसार प्रथमा, द्वितीया, षष्ठी, सप्तमी आदि विभक्तियों का प्रयोग करना सरल होता है, पर सर्वत्र इन हिन्दी के कारक चिह्नों के अनुसार ही विभक्ति प्रयोग नहीं किया जा सकता। व्याकरण शास्त्र में, कुछ विशेष स्थलों में, कुछ विशिष्ट शब्दों के योग में, अर्थानुरोध से कुछ विशेष विभक्तियों के प्रयोग विषयक नियम निर्धारित किये गये हैं, छात्रों को इन नियमों का अभ्यास होना अत्यावश्यक है। नियम विरुद्ध विभक्तियों के प्रयोग से वाक्य अशुद्ध ही माना जाता है। इन नियमों का जानना और तदनुसार प्रयोग करना अनिवार्य होता है।

(५) विशेषण वाची पदों के प्रयोग पर भी विशेष ध्यान रखना चाहिए। संस्कृत में, विशेषण वाची पद में, उसी विभक्ति, उसी वचन और उसी लिङ्ग का प्रयोग किया जाता है जो उनके विशेष्य वाची पदों में होते हैं, अतः विशेषण वाची पद के प्रयोग के पूर्व विशेष्य पदों को देखना चाहिए और नियमानुसार उनके लिङ्ग वचन आदि को देखकर ही विशेषण पदों का प्रयोग करना चाहिए।

ये विशेषण पद कई तरह से बनते हैं, कुछ तो अपने विशेष्य पदों में गुणावगुण, संख्या, परिमाण संकेत आदि का निर्देश करने वाले, जैसे उत्तमः पुरुषः, सती स्त्री, स्वच्छं जलम्, मूर्खः नरः, दुष्टा स्त्री, अपेयं जलम्, कति जनाः, द्वौ जनौ, बहवो नराः, एका श्रीः, त्रीणि फलानि, कियत् जलम्, कियान् धर्मः, तावन्तः पुरुषाः, यावती विद्या, यादृशानि फलानि, कियन्ति पुष्पाणि, इमे मनुष्याः, एभि र्जनैः, ताभिः बालिकाभिः, तेषु कार्येषु, सर्वेषां जनानाम्, असौ जनः, आसां स्त्रीणाम्, कियती मात्रा, कियान् फलोदयः, आदि, सामान्य विशेषण होते हैं और कुछ धातुओं के आगे प्रत्यय जोड़कर बनते हैं अर्थात् अर्थानुरोध से प्रत्ययान्त शब्द भी विशेषण होते हैं, जैसे :—धावन्तो जनाः, उत्पतन्तो भ्रमरावलिः, निपतन्ति फलानि, संश्लिष्टं वाक्यम्,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विद्यावनतः पुरुषः, गुणोपेता स्त्री, अपेयं जलम्, गुणवान् पुरुषः, अध्येतव्यानि शास्त्राणि, निर्देश्याः विषयाः, अनुच्चार्य्यं वाक्यम्, दुर्जेयाः शत्रवः, आदि । अकर्मक क्रियाओं के साथ आने वाले विशेषणों के प्रयोग में प्रायः भ्रम हो जाता है अतः इन पर विशेष ध्यान रखना चाहिए, जैसे :—स बहुभिरपि विघ्नैः तपसः **विरतो** नाभवत्, ते **दुःखिनो** बभूवुः, सा धनं प्राप्य **प्रसन्ना** जाताः । मित्रमासाद्य तस्य मनः **प्रसन्न**-मभवत् । कटुवचनेन सोऽतिक्रुद्धोऽभवत्, परिश्रमेण सा श्रान्ता जाता, विषयोऽयं विचारपथादतीतोऽभवत् । वार्तेयं श्रुतिपथ मागता बभूव, आदि । क्रियाविशेषणों में प्रायः द्वितीया एकवचन का प्रयोग होता है ।

(६) संस्कृत वाक्यों में क्रियापदों का ही समुचित प्रयोग कुछ कठिन होता है, क्योंकि क्रियापदों के अनेक रूप होते हैं और विविध प्रयोग होते हैं । अतः इनके प्रयोग पर सबसे अधिक ध्यान रखना चाहिए ।

(अ) संस्कृत में तीन वाच्य होते हैं—कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य, भाव-वाच्य ।

(आ) कर्तृवाच्य में क्रिया कर्तृसापेक्ष होती है, अर्थात् कर्ता में जो पुरुष और जो वचन होता है, क्रियारूप में भी वही पुरुष और वही वचन होगा, जैसे :—ते तत्र गच्छन्ति, सा अत्र उपविशति, स तत्र पठति, त्वं कुत्र गमिष्यसि, आवां तत्र पठावः, वयं तव कार्यं कुर्मः, यूयं कुतः आगच्छथ, युवां पुस्तकं नयथः, तौ गृहं गच्छतः आदि ।

(इ) कर्मवाच्य में क्रिया कर्मसापेक्ष होती है अर्थात् कर्म में जो पुरुष और वचन होगा क्रिया में भी वही पुरुष और वचन होगा, कर्ता में चाहे जो पुरुष चाहे जो वचन बना रहे । जैसे :—रामेण राक्षसः हन्यते, तैः धर्मः क्रियते, ताभ्यां मृगो हन्यते, त्वया जलं पीयते, युवाभ्यामेको जनो दृश्यते, युष्माभिः बालकोऽयमानीयते, मया बालकाः ताड्यन्ते, तेन पुस्तकानि पठ्यन्ते, आवाभ्यां जनोऽयमवलोक्यते, अस्माभिः इमानि वस्त्राणि नीयन्ते आदि ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(ई) कर्तृवाच्य वाक्यों में कर्ता में प्रथमा और कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है, परन्तु कर्मवाच्य वाक्यों में कर्ता में तृतीया और कर्म में प्रथमा विभक्ति होती है।

(उ) कर्मवाच्य वाक्यों में सदा क्रिया में आत्मने पद ही होता है, परस्मैपद नहीं, जो धातु केवल परस्मैपदी होते हैं वे भी कर्मवाच्य में आत्मने पदी हो जाते हैं। जैसे :—रामेण लक्ष्मणः दृश्यते, तैः स्वकार्यं करिष्यते, पशुभिः जलानि पीयन्ते, मया त्वं दृश्यसे, त्वया अहं दृश्ये, अस्माभिः युवां दृश्येथे, आवाभ्यां यूयं दृश्यध्वे, युवाभ्याम् आवाम् दृश्यावहे, युष्माभिः वयं दृश्यामहे।

(ऊ) कर्म वाच्य का प्रयोग इसी नियम के अनुसार सभी लकारों में हो सकता है, जैसे :—तेन दुग्धम् अपीयत, तेन तपांसि अक्रियन्त, तैः दानं क्रियेत, अस्माभिः पुस्तकानि पठ्येरन्, त्वया पशवः अहन्यन्त, त्वया पुष्पाणि आनीयन्ताम्, मया श्यामः दृश्यताम्, त्वया न किमपि फलं लप्स्यते, अस्माभिः पुस्तकानि पठिष्यन्ते, आदि।

(ए) कर्म वाच्य क्रिया पदों में केवल लट्, लोट्, लङ्, विधिलिङ् लकारों के रूपों में ही तिङन्त के अन्यरूपों से कुछ विलक्षणता रहती है, शेष लकारों में तो केवल आत्मने पद ही करना पड़ता है, और कोई परिवर्तन नहीं होता, यदि धातु प्रथमतः आत्मने पद ही होता है तब इन लकारों के कर्मवाच्य के रूपों तथा कर्तृवाच्य के रूपों में कोई अन्तर नहीं होता है, जैसे :—जैसे, लभ (आत्मनेपदी धातु) से लृट् लकार में लप्स्यते रूप बनता है, कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य दोनों में ही यह रूप समान होगा। इसी प्रकार उक्त चार लकारों को छोड़ कर शेष लकारों के भी रूप समान होंगे परन्तु परस्मैपद धातु के रूप कर्मवाच्य में आत्मने पद में ही बनेंगे, जैसे—पास्यते, गमिष्यते, स्थास्यते आदि।

(ऐ) सकर्मक धातुओं के रूप कर्तृवाच्य और कर्मवाच्य दोनों में प्रयोगानुसार बनते हैं। पर अकर्मक धातुओं से कर्तृवाच्च और भाव

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वाच्य में रूप बनते हैं। भाव वाच्य में कर्ता में तृतीया विभक्ति होती है, यतः भाव वाच्य केवल अकर्मक धातुओं से होता है, अतः यहाँ कर्म का प्रयोग सम्भव ही नहीं होता।

(ओ) भाव वाच्य में क्रिया स्वतन्त्र होती है, कर्मसाक्षेप तो वह हो ही नहीं सकती, कर्तृ सापेक्ष भी नहीं होती। वस्तुतः भाव का अर्थ ही साध्य या क्रिया है, अतः भाववाच्य की क्रिया कर्ता की अपेक्षा न कर स्वतन्त्र रूप से प्रयुक्त होती है, अत एव सापेक्ष न होने के कारण भाववाच्य की क्रिया में निसर्गतः एक वचन ही होता है अर्थात् उसमें प्रथम पुरुष एक वचन का ही केवल एक ही रूप होगा, जैसे :—सः तिष्ठति=तेन स्थीयते, सा गच्छति=तया गभ्यते, फलं भवति=फलेन भूयते, इसी प्रकार मया, अस्माभिः, त्वया, युष्माभिः वा—गम्यते, स्थीयते, भूयते आदि रूप ही होंगे। कर्ता में चाहे जो पुरुष चाहे जो वचन हो क्रिया में एक ही रूप होगा। इसमें भी सभी लकारों में एक-एक रूप होगा, जैसे—अस्थीयत, अगम्यत, गम्येत, भूयताम्, अभूयत आदि शेष लकारों में केवल आत्मने पद का प्रयोग करना पड़ेगा। भाववाच्य व कर्मवाच्य के रूप समान होते हैं, जैसे कर्मवाच्य में आत्मने पद अनिवार्य है, उसी प्रकार भाववाच्य में भी।

(औ) जब कभी कोई धातु सकर्मक होते हुए भी वक्ता की इच्छानुसार अकर्मक की तरह प्रयुक्त होता है तब उससे भी भाववाच्य हो सकता है, इसी प्रकार जब अकर्मक भी धातु उपसर्गादि कारणवश सकर्मक बन जाता है तब उससे कर्मवाच्य भी बन सकता है, जैसे—स्था, भू, गम् आदि धातु इन उपसर्गों के साथ सकर्मक हो जाने से कर्मवाच्य में प्रयुक्त हुए हैं :—तेन सर्वाणि कार्याणि अनुष्ठीयन्ते; तैः दुःखानि अनुभूयन्ते, अनुभूयते आनन्दः सर्वैं र्जनैः।

(७) जब तक कर्मवाच्य और भाववाच्य के नियमों और प्रयोगों का अच्छा अभ्यास न हो, तब तक साधारण क्रियारूपों का ही

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

प्रयोग करना चाहिए। कर्मवाच्य और भाववाच्य प्रयोग अनिवार्य नहीं हैं।

(८) जिस प्रकार तिङन्त (उपर्युक्त) प्रत्ययों से कर्तृवाक्य, कर्मवाच्य तथा भाववाच्य के क्रिया रूप बनते हैं, उसी प्रकार कृदन्त प्रत्ययों–क्त, क्तवतु, आदि प्रत्ययों से भी इन सभी वाच्यों के रूप बनते हैं, इनके प्रयोग के लिए भी कर्ता और कर्म सम्बन्धी वही नियम हैं जो कि तिङन्त प्रत्ययों के योग में बतलाये गये हैं, केवल अन्तर इतना है कि तिङन्त क्रिया रूपों पर तो कर्ता या कर्म के लिङ्ग का प्रभाव नहीं पड़ता पर कृदन्त क्रिया रूपों पर लिङ्ग का भी प्रभाव पड़ता है, पर 'पुरुष' का नहीं, वचन का प्रभाव दोनों में समान है।

(९) कर्तृवाच्य में भूतकाल में क्तवतु (तवत्) प्रत्यय का प्रयोग होता है, जैसे :—स स्वपुस्तकं पठितवान्, ते विद्यालयं गतवन्तः, अहं वालकम् आनीतवान्, त्वं कार्यं कृतवान्। सा पुस्तकं पठितवती, ताः गृहं गतवत्यः, वृक्षात् पत्राणि पतितवन्ति, फलं पतितवत्। स इष्टवान्, स तत्र उषितवान्, सा शपितवती, आदि।

(१०) क्त प्रत्यय भाव और कर्मवाच्य में भूतकाल में होता है, जैसे; कर्मवाच्य—तेन पुस्तकं पठितम्, ताभ्यां बालकाः आनीताः, चौरैः धनं लब्धम्, तैः सिंहः हतः, अस्माभिः एकः जनः दृष्टः, तया गृहकार्याणि कृतानि, तेन बालिका दृष्टा, मया पुस्तकानि दृष्टानि, राक्षसैः समुद्रः मथितः तेन सा स्त्री रक्षिता। भाववाच्य—कर्ता में तृतीया, क्रिया रूप में नपुं०एकवचन हो होगा—तेन शयितम्, तैः पृष्टम्, तया वने भ्रान्तम्, शत्रुभिः रुदितम्।

(११) गत्यर्थक् अकर्मक धातु, श्लिष्, शीङ्, स्था, आस, वस, जन रुह और जॄ धातुओं से क्त प्रत्यय भूतकाल में कर्तृवाच्य में भी होता है अतः इनके कर्ता में प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है, यथा; अहं तत्र गतः, सा तत्र गता, स मुनिः गङ्गा तटम् अवतीर्णः, स वनं प्रस्थितः, माता पुत्र माश्लिष्टा, तस्य कन्या जाता, स भूमौ शयितः, सा तत्रैव स्थिता।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(१२) इसी प्रकार कृत्य प्रत्ययों—तव्यत, अनीयर, ण्यत् आदि के योग से बनने वाले क्रिया रूपों का प्रयोग भी भाव और कर्म में होता है, इनमें भी कर्तृ कर्म सम्बन्धी लिङ्ग वचन के नियम क्त प्रत्यय के समान ही रहते हैं, यथा; कर्मवाच्य—मातृभूमिः सर्वैः पूजनीया, तेन बालकाः आनेतव्याः, तया एतानि पुस्तकानि पाठ्यानि, अस्माभिः गुरुजनाः अर्चनीयाः, त्वया धर्मः चेतव्यः, मित्राणि युष्माभिः न हातव्यानि, त्वया स्वच्छानि जलानि पेयानि। भाववाच्यः—तया अत्रैव स्थातव्यम्, अस्माभिः सावधानैः भवितव्यम्, न कदापि तेन एकाकिना भाव्यम्, वर्षाकाले अस्माभिः भूमौ न शयितव्यम्।

(१३) इन उक्त कृदन्त एवं कृत्य प्रत्ययान्त शब्दों का प्रयोग विशेषण के रूप में भी होता है, यथा—**विनतः** जनः न दुःख मनु भवति, पशुभिः **पीतं** जलम् **अपेयं** भवति, तस्मिन् **गतवति** स आगतः, स्वयं **नष्टः** परान्नाशयति, एते प्रश्ना न **प्रष्टव्याः**, **मर्त्यः** अवश्यं मरिष्यति, **भार्या** अवश्यं भरणीया, रक्षितव्यं वस्तु न हातव्यम्। **पाठ्यानि** इमानि पुस्तकानि, **श्रोतव्यानि** च ते वचनानि।

(१४) जिस प्रकार क्त क्तवतु आदि कृदन्त प्रत्ययों का प्रयोग कर्मवाच्य और भाववाच्य में भूतकाल में होता है, उसी प्रकार शतृ और शानच् आदि कृदन्त प्रत्ययों का प्रयोग वर्तमान और भविष्यत् काल में होता है, पर पूर्ण क्रिया के रूप में इनका प्रयोग न होकर प्रायः विशेषण के रूप में ही इनका प्रयोग होता है, यथाः—पुस्तकं **पठन्** स गृहं गच्छति, कार्यं **कुर्वन्तः कुर्वाणा** वा न ते हसन्ति, गृहं **गच्छन्** स विभेति,। इनके कर्मवाच्य रूपः—पठ्यमान, क्रियमाण, गम्यमान होंगे। शतृ प्रत्यय परस्मैपदी धातुओं से और शानच् आत्मनेपदी धातुओं से होता है, जो धातु उभयपदी हैं उनसे दोनों प्रत्यय होते हैं। भविष्यत् काल में इन प्रत्ययों से करिष्यत्, करिष्यमाण, नेष्यत् नेष्यमाण, यास्यत्, दास्यमान, पठिष्यत् आदि रूप बनते हैं।

(१५) सुबन्त, तिङन्त, कृदन्त, समासान्त, तद्धितान्त आदि अनेक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विध प्रत्यय हैं जिनसे कई प्रकार के शब्द बनते हैं, पर अल्पज्ञ छात्रों के लिए इतने विस्तार में जाना सम्भव नहीं, अतः उन्हें संक्षेपतः कुछ अत्यावश्यक प्रत्ययों पर ही, जिनमें से कुछ का निर्देश नीचे किया जा रहा है, ध्यान देना आवश्यक है।

(अ) कृदन्त प्रत्ययों के योग से बनने वाले शब्द प्रायः संज्ञा, विशेषण और अव्यय होते हैं, कुछ का प्रयोग विशेषण और क्रिया दोनों ही रूपों में होता है जिनका विवरण ऊपर दिया जा चुका है।

तिङन्त और कृदन्त प्रत्ययों में यह अन्तर है कि तिङन्त प्रत्ययों के योग से तो केवल क्रियापद ही बनते हैं, पर कृदन्त प्रत्ययों के योग से संज्ञा विशेषण और अव्यय पद भी बनते हैं, संक्षेपतः इनको इस प्रकार देखा जा सकता है :—

(आ) कर्तृ वाचक कृत् प्रत्यय, जो कि उस धातु से सूचित कार्य को करने वाले के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं :—

(१) ण्बुल् (बु=अक) कृ+अक=कारकः, दा+अक=दायकः, पठ+अक=पाठकः, स्था+अक=स्थापकः, हृ+अक=हारकः।

(२) तृच् (तृ) कृ से कर्ता, दा से दाता, भृ से भर्ता, पच् से पक्ता।

(३) णिनि (इन्) ग्रह् से ग्राही, दा से दायी, स्था से स्थायी, वद से वादी, उत्+सह से उत्साही, अप+राध् से अपराधी।

(४) ल्यु (यु=अन) नन्दि—नन्दनः, मदनः, दूषणः, शोभनः,।

(५) अच (अ) पच्—पचः, सृप्—सर्पः, चलः, वदः, क्षमः, पतः।

(६) क (अ) कृश्—कृशः, बुध्—बुधः, क्षिप्—क्षिपः, ज्ञा—ज्ञः, प्री—प्रियः, कॄ—किरः, लिख्—लिखः, प्र+ज्ञा=प्रज्ञः, गाम्+दा—गोदः, कम्वलम्+दा—कम्वलदः, प्र+स्था—प्रस्थः।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(७) अण् (अ) कुम्भम्+कृ=कुम्भकारः, भारहारः, जलहारः।

(८) अधिकरणोपपद चर् से ट (अ) प्रत्यय—कुरुचरः, वनचरः। भिक्षा, सेना, आदाय पूर्वक चर् से—भिक्षाचरः, सेनाचरः आदि।

(९) कर्म पूर्वक कृ से ताच्छील्यादि अर्थों में यशस्करी, वचनकरः आदि।

(१०) दिवा, निशा, धनुष्, यत्, तत् आदि पूर्वक कृ से ट प्रत्यय—दिवाकरः, निशाकरः, धनुष्करः, यत्करः, तत्करः, बहुकरः।

(११) खश् (अ) कर्मपूर्वक धातुओं से यह प्रत्यय होता है, खित् प्रत्ययों के आगे रहने पर मुम् (म्) का आगम भी होता है। जन+एज्+खश्=जनमेजयः, इसी प्रकार नासिकन्धमः, स्तनन्धयः, कूलमुद्रुजः, कूलमुद्वहः, वहंलिहः, अभ्रंलिहः, विधुन्तुदः, अरुन्तुदः, असूर्यम्पश्याः, ललाटन्तपः,

(१२) खच् (अ) मुम् (म्) प्रियम्वदः, वशम्वदः। विश्वम्भरः, पतिम्वरा, मृत्युञ्जयः, युगन्धरः, परन्तपः, अरिन्दमः। वाचंयमः, प्रियङ्करः, क्षेमङ्करः (वै० क्षेमकरः भी)।

(१३) मन—धातु के आगे णिनि और खश्—पण्डितमानी, पण्डितम्मन्यः।

(१४) 'ड' (अ) इस प्रत्यय के आगे होने पर धातु के अन्तिम हल् वर्ण तथा उससे पूर्व के स्वर का लोप होता है। द्विजः, अध्वगः, पारगः, सर्वगः, दूरगः, उरगः, सुगः, सर्वत्रगः, अगः, अजः।

(इ) भावार्थ कृत् प्रत्यय :—जो धातु का अपना अर्थ द्योतित करने के लिए लगाये जाते हैं :—

(१) घञ्—(अ) पच्+घञ्=पाकः, कम्—कामः, लभ–लाभः।

(२) अच्—(अ) इकारान्त धातुओं से—जि—जयः, चि—चयः।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(३) अप्—(अ) ॠकारान्त और उकारान्त धातुओं से—कॄ—करः, गॄ—गरः, यु—यवः, लू—लवः, पू—पवः, स्तु—स्तवः।

(४) ग्रह, वृ, दृ, गम्, वश् से अप्=ग्रहः, वरः, दरः, गमः, वशः।

(५) नङ् (न) यज्—यज्ञः, याच्—याच्ञा, यत्—यत्नः, प्रच्छ—प्रश्नः।

(६) कि (इ) धा और दा रूप धातुओं से—निधिः, उपाधिः, विधिः।

(७) क्तिन् (ति) कृ—कृतिः, लभ—लब्धिः, आप्—आप्तिः, मन्—मतिः।

(८) ॠकारान्त और लू आदि से—कॄ—कीर्णिः, गीर्णिः, लूनिः।

(९) क्विप् (कुछ शेष नहीं रहता) सम्पत् विपत्। क्तिन्—सम्पत्तिः आदि।

(१०) अ प्रत्यय (यह सन् यङ् आदि प्रत्ययान्त धातुओं से लगता है, चिकीर्ष्+अ+टाप्—चिकीर्षा, बुभुक्षा, पुत्रकाम्या।

(११) युच् (अन+टाप्) णिजन्त धातुओं से—कारणा, धारणा।

(१२) ल्युट् (अन) नपुं० भाववाचक—भू—भवनम्, करणम्, गमनम्, स्थानम्, पठनम्, धावनम्, दानम्, हसनम्।

(ई) अव्यय कृदन्तः—जिन प्रत्ययों के योग में अव्यय शब्द बनते हैं।

(१) तुमुन (तुम्) गन्तुम् पठितुम्, दातुम्, जेतुम्, हर्तुम्, नेतुम्।

(२) क्त्वा (त्वा) गत्वा, पठित्वा, दत्त्वा, हृत्वा, जित्वा, नीत्वा उपसर्गपूर्वक क्त्वा को ल्यप् (य और ह्रस्व के आगे त्य) हो जाता है:—आदाय, प्रगृह्य, प्रोच्य, उत्थाय, निरीक्ष्य, विधाय, उपेत्य।

(३) णमुल् (अम्) श्रु—श्रावं श्रावं, पा-पायं पायं, भोजं भोजं, विकल्पतः क्त्वा भी—श्रुत्वा, पीत्वा, भुक्त्वा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(१६) अभी तक जिन कर्मवाच्य क्रिया रूपों एवं कृदन्त रूपों का उल्लेख किया गया है, यद्यपि ये देखने में तो कुछ कठिन—से प्रतीत होते हैं, पर ऐसे रूपों का बनाना अत्यन्त सरल है, किसी भी धातु से कुछ विशेष नियमों पर ध्यान रखने से बड़ी सरलता से ये रूप बनाये जा सकते हैं।

इन रूपों की सिद्धि में कुछ विशेष नियमों के अतिरिक्त सन्धि नियम ही अधिक कार्य करते हैं। अतः सन्धि नियमों का जानना अत्यावश्यक है, कुछ आवश्यक सन्धि नियम नीचे दिये जा रहे हैं :—

(अ) सन्धि दो समीपवर्ती ही शब्दों में हो सकती है। सन्धि में पूर्वशब्द का अन्तिम वर्ण तथा आगे वाले या परवर्ती शब्द का प्रथम वर्ण ही प्रभावित होता है। सन्धि के कारण कई प्रकार के परिवर्तन हो जाते हैं, यथा :—

(१) प्रथम शब्द के अन्तिम अक्षर का या द्वितीय शब्द के प्रथम अक्षर का **लोप** हो जाना, कृष्णः+उपस्थितः=कृष्ण उपस्थितः, (अन्तिम वर्ण विसर्ग का लोप), रामः+अवतु=रामोऽवतु (पर शब्द के प्रथमाक्षर का लोप)

(२) पूर्व तथा पर दोनों अक्षरों के स्थान पर, अथवा दोनों में से किसी एक के स्थान पर किसी एक नये वर्ण का आ जाना; उमा+ईश्वरः=उमेश्वरः (आ+ई के स्थान पर ए) दधि+आनय=दध्यानय (इ के स्थान पर 'य्')

(३) किसी नये वर्ण का आगम होना, तस्मिन्+अपि=तस्मिन्नपि, (न् का आगम) इत्यादि।

(४) सन्धि प्रायः—स्वर+स्वर, व्यञ्जन+स्वर, व्यञ्जन+व्यञ्जन, विसर्ग (:)+स्वर, विसर्ग (:)+व्यञ्जन, में होती है, अतः इनको स्वर, व्यञ्जन तथा विसर्ग सन्धि यथास्थिति कहा जाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(५) स्वर से स्वर आगे रहने पर ही स्वरसन्धि होती है, जिसे—दीर्घ, यण्, गुण, वृद्धि, अयादि चतुष्टय, पूर्वरूप, पररूप, प्रकृतिभाव, इन मुख्य आठ रूप में देखा जा सकता है, यथा। विद्या+आलय:=विद्यालय: (दीर्घ), मधु+अरि:=मध्वरि: (यण्), रमा+ईश:=रमेश: (गुण), एक+एव=एकैव (वृद्धि), एके+एव=एक एव (अयादि च०), हरे+अव=हरेऽव (पूर्वरूप), प्र+एजते=प्रेजते (पररूप), हरी+एतौ=हरी एतौ (प्रकृति भाव)।

(६) व्यञ्जन सन्धि, व्यञ्जन+व्यञ्जन और व्यञ्जन+स्वर दोनों में होती है। स्+श या चवर्ग=श्—कृष्णस्+शेते =कृष्णश्शेते, रामस्+चिनोति=रामश्चिनोति । स्+ष या टवर्ग=ष्—रामस्+षष्ठः=रामष्षष्ठः, रामस्+टीकते =रामष्टीकते ।

त्+श या चवर्ग=च्—सत्+चित्=सच्चित्, सत्+शिष्यः =सच्शिष्यः और सच्छिष्यः भी। त्+टवर्ग=ट्–तत्+टीका=तट्टीका, ष्+त=ट्=पेष्+ता=पेष्टा। त्+ल=ल्—तत्+लयः=तल्लयः ।

(७) य् र् ल् व तथा अनुनासिक व्यञ्जनों को छोड़कर प्रायः किसी भी व्यञ्जन के बाद, किसी भी वर्ग के तृतीय और चतुर्थ वर्णों के आगे रहने पर पूर्व व्यञ्जन अपने वर्ग के तृतीय अक्षर में परिवर्तित हो जाता है—लभ्+धः=लब्धः। अप्+धिः=अब्धिः, पयोमुक्+गर्जति=पयोमुग्गर्जति। किसी स्वर के आगे आने पर वर्ग का प्रथमाक्षर तृतीय में परिवर्तित होता है, वाक्+ईशः—वागीशः, तत्+इति=तदिति ।

वर्ग के प्रथमाक्षर के बाद 'ह' उसी वर्ग के चतुर्थ वर्ण में तथा प्रथमाक्षर तृतीय वर्ण में परिवर्तित होता है—वाक्+

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हरिः=वाग्घरिः, अप्+हारः=अब्भारः, अच्+हीनम्=अज्झीनम्, तत्+हितम्=तद्धितम् ।

(८) ह को छोड़कर किसी भी पदान्त व्यञ्जन के बाद, अनुनासिक वर्ण आगे होने पर, पूर्व व्यञ्जन के स्थान पर उसी वर्ग का पाँचवाँ अक्षर विकल्प से हो जाता है और यदि अनुनासिक वर्ण प्रत्यय का हो तो नित्य होता है—एतद्+मुरारिः =एतन्मुरारिः, एतद्मुरारिः । चित्+मयम्=चिन्मयम् । वाक्+मात्रम्=वाङ्मात्रम् । पदान्त में म् के बाद किसी भी व्यञ्जन के आने पर 'म्' का अनुस्वर तथा अनुनासिक वर्ण एवं य व र ल को छोड़कर किसी भी व्यञ्जन के आगे आने पर अपदान्त में भी म् और न् को अनुस्वर होता है—हरिम्+वदति=हरिंवदति । आक्रम्+स्यते=आक्रंस्यते, यशान्+सि=यशांसि, आदि ।

(९) इसके अतिरिक्त नीचे के उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं—
उत्+स्थानम्=उत्त्थानम्, सम्+राट्=सम्राट्, शिव+छाया=शिवच्छाया, विद्वान्+लिखति=विद्वांल्लिखति, सम्+स्कर्ता=संस्कर्ता । चक्रिन्+त्रायस्व=चक्रिंस्त्रायस्व, कस्मिन्+चित्=कस्मिँश्चित्, कः+कः=कस्कः, कान्+कान्=काँस्कान्, पुम्+कोकिलः=पुंस्कोकिलः आदि ।

(१०) किसी एक ही पद में र् ष् के बाद 'न्' का 'ण' हो जाता है, यदि र्, ष् और न के बीच किसी स्वर,, य व र ल, कवर्ग पवर्ग, आङ् तथा अनुस्वार का व्यवधान भी हो तो भी न का ण हो जायेगा—चतुर्+नाम्=चतुर्णाम्, पूष्+ना=पूष्णा, पितृ+नाम्=पितृणाम्, रामेण, शीर्षाणि, मित्राणि, परन्तु पद के अन्त के न को ण नहीं होता—रामान्, ऋषीन्, पितृन् ।

(११) अ आ को छोड़कर किसी स्वर, य व र ल ह, अथवा कवर्ग

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

के बाद प्रत्यय सम्बन्धी या आदिष्ट 'स्' को ष होता है, यदि वह पदान्त में न हो—जनेषु, हरिषु, एषाम्, नदीषु, धेनुषु, गोषु, ग्लौषु, वधूषु, कर्तृषु।

(१२) ह्रस्व स्वर के बाद पद के अन्त में ङ् न् ण् को द्वित्व होता है, स्वर के आगे होने पर। प्रत्यङ्ङात्मा (प्रत्यङ्+आत्मा) सन्नच्युतः (सन्+अच्युतः) सुगण्+ईश=सुगण्णीशः। इत्यादि।

(आ) विसर्ग सन्धि के लिए यह जानना आवश्यक है कि विसर्ग सदा स्वरों के बाद आता है, व्यञ्जनों के बाद कदापि नहीं। इसके परिवर्तन कई प्रकार के होते हैं, जैसे—लोप, ो, र्, :, श्, ष्, स् आदि। जब विसर्ग 'अ' के बाद आता है तो परिवर्तन भिन्न प्रकार के होते हैं, और इ इत्यादि स्वरों के बाद आता है तो भिन्न प्रकार के। इन परिवर्तनों को समझने के लिए सम्पूर्ण वर्णमाला को इन वर्गों में विभक्त कर लीजिए, तदनु एक-एक वर्ग को सामने रखकर विसर्ग के परिवर्तन देखे जा सकते हैं—

वर्ग १—अ आ इ से औ तक, वर्ग २—क, ख, प, फ, श, ष, स,
वर्ग ३—च छ, ट ठ, त थ, वर्ग ४—शेष व्यञ्जन ह तक।

(१) यदि विसर्ग अकारान्त शब्द के आगे है तो प्रथम वर्ग के 'अ' को छोड़कर शेष स्वरों के आगे रहने पर विसर्ग का लोप हो जायेगा और 'अ' के आगे 'ो' हो जायेगा—अतः+अत्र =अतोऽत्र, रामः+आगतः=राम आगतः, रामः+इतः, रामइतः सूर्यः+उदेति=सूर्य उदेति, रामः+एकः=राम एकः। यदि विसर्ग इकारान्तादि स्वरों के आगे होगा तो वर्ग १ के आगे विसर्ग का 'र्' हो जायेगा—हरिः+अवति=हरिरवति, कविः+आगतः=कविरागतः, श्रीः+अस्तु=श्रीरस्तु, गुरुः+आगतः=गुरुरागतः, धेनुः+एति=धेनुरेति, तैः+अपि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

तैरपि, कवेः+अपि=कवेरपि, भानोः+उदयः=भानोरुदयः, गौः+अस्ति=गौरस्ति ।

(२) वर्ग २ के वर्णों के आगे रहने पर, सर्वत्र विसर्गों का विसर्ग ही रहेगा, श ष स के साथ विसर्ग भी रह सकता है अथवा वैसा ही 'स' भी हो सकता है—रामः+कथयति=रामः कथयति, जनः+पतति=जनः पतति, वृक्षः+फलति=वृक्षः फलति, हरिः+कथ्यते=हरिः कथ्यते, धेनुः+फलति=धेनुः फलति, तरोः+फलम्=तरोः फलम्, गौः+पत्राणि=गौः पत्राणि । हरिः+शेते=हरिः शेते या हरिश्शेते, रामः+शरणम्=रामः शरणम् या रामश्शरणम्, रामः+षष्ठः=रामः षष्ठः या रामष्षष्ठः, कविः+स्वपिति=कविः स्वपिति या कविस्स्वपिति ।

(३) वर्ग ३ के वर्णों के आगे रहने पर सभी प्रकार के विसर्गों का 'च, छ' के साथ 'श्' 'ट, ठ' के साथ ष् और 'त, थ' के साथ स् होता है—रामः+चित्रम्=रामश्चित्रम्, गोः+चरित्रम्=गोश्चरित्रम्, धेनुः+छाद्यते=धेनुश्छाद्यते, भानुः+चलति=भानुश्चलति, रामः+टीकते=रामष्टीकते, धेनोः+ठक्=धेनोष्ठक्, रामः+तत्र=रामस्तत्र, हरिः+तरति=हरिस्तरति ।

(४) वर्ग ४ के वर्णों के आगे रहने पर अकारान्त के आगे विसर्ग का 'ो' तथा इकारान्त आदि के आगे विसर्ग का 'र्' होता है—रामः+गतः=रामोगतः, बालः+हसति=बालोहसति, देवः+याति=देवोयाति । आकारान्त के बाद विसर्ग का लोप होगा—देवाः+गताः=देवा गताः, हरिः+वदति=हरिर्वदति, धेनुः+गच्छति=धेनुर्गच्छति, गोः+गतिः=गोर्गतिः, दण्डैः+मृतः=दण्डैर्मृतः, गौः+धावति=गौर्धावति, हरेः+महत्त्वम्=हरेर्महत्त्वम् ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(इ) कर्मवाच्य और कृदन्त रूपों को बनाने के लिए इन नियमों पर ध्यान रखना आवश्यक है—

(१) जिन प्रत्ययों में से ण्, ङ्, क्, ख्, प्, ञ् आदि की इत् संज्ञा=(लोप) हो जाता है उसे ङित्, णित्, कित्, खित्, पित्, ञित् के इस नाम से पुकारा जाता है। अतः जिन प्रत्ययों में से ण् ञ् का लोप हो जाता है, वे प्रत्यय णित् ञित् कहे जायेंगे इसी प्रकार कित् और ङित् पित् आदि भी। अन्तिम हल् वर्ण से पूर्व का वर्ण **उपधा** कहा जाता है। अ को वृद्धि होकर 'आ' इ ई को ऐ, उ ऊ को औ और ऋ को वृद्धि होकर 'आर्' हो जाता है, इसी प्रकार इ, ई को 'ए' गुण, उ ऊ को ओ गुण, और ऋ को अर् गुण होता है।

(२) यदि धातु स्वरान्त अथवा 'अ' उपधा वाली हो और उसके आगे कोई णित् या ञित् प्रत्यय हो तो धातु में वृद्धि (अ को आ, इ ई को ऐ, उ ऊ को औ, ऋ को आर्) होती है, यदि णित् ञित् प्रत्यय नहीं होते तो गुण होता है अर्थात् ऋ को अर्, इ ई को ए, और उ ऊ को ओ होता है, यथा—
लभ+घञ् (ञित् प्रत्यय है 'अ शेष रहता है; धातु के उपधा में 'अ' है अतः वृद्धि होकर 'लाभः'। कृ+ण्वुल् (णित्, वु को अक् आदेश, धातु स्वरान्त अतः ऋ को) आर् वृद्धि होकर 'कारकः। कृ+तृच् (णित् अथवा ञित् न होने से वृद्धि न होकर ऋ को) अर् गुण होकर कर्तृ–कर्ता। दिश्+घञ् (ञित् होने पर भी धातु के उपधा में 'अ' नहीं 'इ' है और न धातु स्वरान्त ही है अतः वृद्धि न होगी तब इ को ए गुण होगा—देशः। इसी नियम के अन्तर्गत ये रूप बनेंगे—पाकः, कामः, श्रावम् श्रावम्, भोजं भोजम्, नेतुं, कर्तुम्, योगः, भू+ल्युट्=गुण अव् आदेश—भवनम्,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

विजयः, नयः, करः, गरः, स्तवः, ग्राही, उत्साही, सर्पः, कारः, हारः, पण्डितमानी ।

(३) जिन प्रत्ययों में क् या ङ् इत् (लोप होता है वे कित् ङित् कहे जाते हैं ऐसे प्रत्ययों के आगे रहते वृद्धि और गुण दोनों ही न होंगे—वुध्+क कित् होने से गुण नहीं) वुधः, कृशः, लिखः, क्षिपः, कृतिः, (कृ+क्तिन्) कृ+त्वा=कृत्वा, नी+क्त्वा=नीत्वा, कृ+क्त=कृतम्, कृ+क्तवतु=कृतवान्—कित् होने से कहीं भी गुण नहीं हुआ और न वृद्धि ही ।

दीर्घ ॠ को इर् और दीर्घ होकर ईर् होता है र और द से परे क्तिन्, क्त, क्तवतु प्रत्ययों के त को न होता है और धातु के द को भी 'न' होता है-कॄ+क्तिन्=कीर्णिः, भिद्+क्त=भिन्नम्, छिन्नम् ।

कर्मवाच्य या भाववाच्य के लट् लोट् लङ् और विधि लिङ् लकारों में धातु और प्रत्यय के बीच् 'यक्' (य) होता है । कित् होने से गुण वृद्धि नहीं होते, सर्वत्र आत्मने पद होता है—आकारान्त धातुओं को 'आ' को 'ई' भी होता है-स्थीयते, दीयते, पीयते, पठ्यते, लभ्यते, क्रियते, (ॠ को इर्) नीयते, भूयते आदि ।

(१७) कृदन्त प्रत्ययों के अतिरिक्त दूसरे प्रकार के प्रत्यय तद्धित प्रत्यय हैं । कृदन्त और तद्धित प्रत्ययों में यह अन्तर है कि तद्धित सदा किसी सिद्ध संज्ञा, विशेषण, अव्यय अथवा क्रिया के बाद जोड़े जाते हैं और इनसे अन्य विशेष अर्थ के द्योतक संज्ञा विशेषण अव्यय क्रिया आदि शब्द बनते हैं, पर कृदन्त प्रत्यय सदा धातु के आगे ही जुड़ते हैं जबकि तद्धित धातु के बाद कभी नहीं आते । इनको संक्षेपतः इस प्रकार देखा जा सकता है ।

तद्धित प्रत्ययों के योग में मूल शब्द में प्रायः इस प्रकार के विकार हो जाते हैं; इन नियमों पर ध्यान रखने से तद्धित प्रत्ययान्त शब्द सरलता से बन जाते हैं :—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(१) जिन प्रत्ययों में ण्, ञ्, क्, होते हैं अर्थात् जो प्रत्यय णित् ञित् और कित् होते हैं, ऐसे प्रत्ययों के आगे रहने पर मूल शब्द के प्रथम स्वर को वृद्धि—अ को आ, ऋ को आर्, इ ई को ऐ, उ ऊ को औ होता है।

(२) जिन प्रत्ययों के आदि में 'स्वर' या 'य' होता है, ऐसे प्रत्ययों के आगे रहने पर, मूल शब्द के अन्तिम स्वर 'अ, आ, इ, ई' का तो लोप हो जाता है, "उ ऊ" को 'ो' गुण होकर स्वर आगे होने पर 'ो' को 'अव्' आदेश हो जाता है, यदि मूल शब्द में पहिले से ही 'ो या ौ' होते हैं तो स्वर या यकारादि प्रत्यय आगे होने पर क्रमशः 'अव्' और 'आव्' हो जाते हैं। यथा—दिति+ण्य (य) (दितेः अपत्यम् पुमान्—दिति की पुरुष सन्तान)=दैत्यः—प्रथम नियम से आदि स्वर "इ" को 'ऐ' वृद्धि, द्वितीय नियम से 'इ' का लोप होकर रूप बनेगा। दक्ष+इञ् (दक्ष की पु० सन्तान) दाक्षिः (प्र० नि० से वृद्धि, द्वि० नि० से अ का लोप) वर्षा+ठक् (ठ को सर्वत्र 'इक' आदेश हो जाता है)=वार्षिकः—(वृद्धि, आ का लोप) अश्वपति+अण् (अ)=आश्वपतम्—(आदि स्वर को वृद्धि, इ का लोप) गर्भिणी+अण् (अ, आदि स्वर को वृद्धि, 'ई' का लोप) गार्भिणम्। शिशु+अण् (अ, आदि स्वर को 'ऐ' वृद्धि, द्वि० नि० से 'उ' को गुण, अव् आदेश) शैशवम्। वधू+अण्=वाधवम् (वृद्धि, ऊ का लोप) गो+यत्=गव्यम् (णित् ञित् कित् न होने से वृद्धि नहीं, ओ को अव् आदेश) नौ+यत्=नाव्यम् (औ को यकारादि प्रत्यय के आगे रहते द्वि० नि० से आव् आदेश)

(३) व्यञ्जनादि प्रत्यय के आगे रहने पर, मूल शब्द के अन्तिम हल 'न्' का प्रायः लोप हो जाता है और यदि स्वर या 'य' आदि वाले प्रत्यय हों तो न् के पूर्व स्वर सहित न् का लोप

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

हो जाता है जैसे; राजन्+मतुप् (मत्—अकारान्त के बाद म का व हो जाता है)=राजवत्—राजवान् । आत्मन्+ (ईय) आत्मीयः ।

(४) प्रत्ययों में आये हुए बु और यु को क्रम से अक और अन आदेश हो जाते हैं । और प्रत्यय के आदि में आये हुये "फ, ढ, ख, छ और घ को क्रम से आयन्, एय, ईन, ईय, और इय हो जाते हैं ।

(५) नीचे भिन्न-भिन्न अर्थों के द्योतक मुख्य-मुख्य प्रत्ययों के योग से बनने वाले तद्धित प्रत्ययान्त उदाहरण दिए जाते हैं, इन्हें इन्हीं नियमों के अनुसार बना लेना चाहिए—

(अ) अपत्यार्थक प्रत्यय (सन्तान का बोध कराने वाले) अकारान्त से इञ् प्रत्यय—दक्ष+इञ् (दक्षस्य अपत्यं पुमान्) दाक्षिः, दशरथ+इञ्=दाशरथिः । स्त्रीप्रत्ययान्त से ढक् प्रत्यय—विनता+ढक् (ढ—एय) वैनतेयः, भागिनेयः । पुल्लिङ्ग से भी—अत्रि+ढक्=आत्रेयः 'पति' अन्त वाले शब्दों से अण्—अश्वपति+अण्=आश्वपतम् । ण्य प्रत्यय भी—प्रजापति+ण्य=प्राजापत्यः, अदिति+ण्य=आदित्यः । उत्स+अण्=औत्सः, राजन्+यत्=राजन्यः, श्वशुर+यत्=श्वशुर्यः । वहु+इञ्=वाहविः, पुत्र+अञ्=पौत्रः, शिव+अण्=शैवः, द्विमातृ+अण्=द्वैमातुरः (ऋ को उर्) रेवती+ठक्=रैवतिकः ।

(आ) हिन्दी के, वान्, मान्, वती, मती अन्त वाले शब्दों का अर्थ सूचित करने वाले प्रत्यय मत्वार्थीय कहलाते हैं—गो+मतुप् (मत्)=गोमान्—गायों वाला, रूपवान्, रूपवती, बुद्धिमती । इसी अर्थ में इन् प्रत्यय भी होता है—दण्ड+इन्=दण्डिन्—दण्डी, धनी, ज्ञानी । ठन् भी दण्डिकः । तारका+इतच्=तारकिम् जिसमें तारागण निकल आये हों, इसी प्रकार पुष्पित, तरङ्गित, हर्षित आदि । माया+विनि=मायावी, यशस्वी ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(इ) भावार्थक एवं कर्मार्थक प्रत्यय—गुरु+त्व=गुरुत्वम्, गुरु+तल्=गुरुता (गुरु का भाव या कर्म, त्व प्रत्ययान्त सदा नपुं, तल् प्रत्ययान्त सदा स्त्रीलिङ्ग होते हैं) शिशुत्वम्, शिशुता, अण्—शैशवम् । पृथु आदि शब्दों से इमनिच्—पृथु+इमनिच् (इमन्) प्रथिमा, महिमा, लघिमा आदि (इमनिच् प्रत्ययान्त शब्द पुल्लिङ्ग होते हैं) । इसी अर्थ में ष्यञ् प्रत्यय भी—शुक्लिमा, शौक्ल्यम्, मधुरिमा माधुर्य्यम्, ब्राह्मण्यम्, चौर्य्यम्, चापल्यम्, नैपुण्यम्, पैशुन्यम्, वालिश्यम्, राज्यम्, आलस्यम्, आधिपत्यम्, मालिन्यम्, जाड्यम् आदि । इसी अर्थ में अञ् प्रत्यय—मुनि+अञ्=मौनम् ।

(ई) समूहार्थक प्रत्यय—वक+अण्=वाकम्, काकम्, मायूरम्, कापोतम् । तल् प्रत्यय भी—जनता, बन्धुता, सहायता ।

(उ) सम्बन्धार्थक (यह इसका है—इस अर्थ के द्योतक)—देव+अण्=दैवं (यह देव का है) ग्रीष्म+अण्=ग्रैष्मम्, निशा+अण्=नैशम् । विकारार्थ में भी—मयूर+अण्=मायूरः (मयूर का विकार अथवा अवयव) मर्कट+अण्=मार्कटः, पैप्पलः । इसी अर्थ में मयट् प्रत्यय भी--भस्ममयम्, सुवर्णमयम् ।

(ऊ) परिमाणार्थक एवं संख्यार्थक–इस अर्थ का द्योतक वतुप् प्रत्यय है, वतुप् के 'व' को 'घ' और घ को 'इय' हो जाता है अर्थात् इयत् बन जाता है जब कि यह प्रत्यय किम् और इदम् के बाद आता है—कियत्, कियान् कियती, इयत् इयान्, इयती । यत् तद् एतद् से यावत् तावत्, एतावत्, यावान् एतावान्, यावती तावती, एतावती (यहाँ व को घ नहीं होता । इसी अर्थ में मात्रच् प्रत्यय—कियन्मात्रम् आदि । किम् से डति प्रत्यय लगाकर 'कति' इसी अर्थ में तयप् भी—द्वितयम्, त्रितयम्, तयप् को अयच् भी—द्वयम्, त्रयम् ।

(ए) हितार्थकः—वत्स+छ (छ को ईय) वत्सीयः (बछड़े को हितकर वस्तु) इसी अर्थ में यत्=गव्यम्, दन्त्यम्, बीज्यम्, युग्यम्, मेध्यम्, नाभ्यम्, शून्यम् (नश्वन् को शून् हो जाता है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(ऐ) क्रियाविशेषणार्थक—पञ्चमी विभक्ति के अर्थ में तसिल् (तस्) प्रत्यय—ग्रामतः, त्वत्तः, मत्तः, अतः, यतः, ततः, कुतः, सर्वतः, इतः, परितः, अभितः। सप्तमी के अर्थ में त्रल् प्रत्यय—कुत्र यत्र तत्र बहुत्र सर्वत्र, इदम् के साथ 'ह'=इह। समयबोधक दा प्रत्यय—यदा, तदा, कदा, अन्यदा, सदा। थाल्—(था) थमु (थम्) प्रत्यय—यथा, तथा, कथम्, इत्थम्। कृत्वसुच् (कृत्वस्) प्रत्यय—पञ्चकृत्वः (पाँच बार) सप्तकृत्वः (सात बार) द्वि०, त्रि शब्दों से सुच् (स्) प्रत्यय—द्विः, त्रिः, चतुः (दो, तीन, चार बार करके)।

(ओ) प्रकीर्ण प्रत्यय—ग्राम से य और खञ् (ईन) ग्राम्यः ग्रामीणः। प्राच् आदि से यत्—प्राच्यम्, उदीच्यम्, अपाच्यम्, प्रतीच्यम्। अमा आदि अव्ययों से त्यप् प्रत्यय—अमात्यः, इहत्यः, क्वत्यः, अत्रत्यः, ततस्त्यः, नित्यः आदि। आ ऐ औ अन्त वाले तथा त्यदादि शब्दों से छ प्रत्यय, छ को ईय—शालीयः, मालीयः, तदीयः, भवदीयः, यदीयः युष्मदीयः, अस्मदीयः। कालवाची शब्दों से ठञ् (इक) प्रत्यय—मासिकम्, पौनः पुनिकः, अण् प्रत्यय भी—ग्रैष्मम्, प्रतिपदम्, सान्ध्यम्, शारदम् वासन्तम्। दो में से एक की विशेषता बताने के लिए तरप् (तर) ईयसुन् (ईयस्) प्रत्यय तथा बहुतों में से एक की विशेषता बताने में तमप् (तम) इष्ठन् (इष्ठ) प्रत्यय आते हैं—लघुतरः, लघीयान्, लघुतमः, लघिष्ठः, गरीयान् गरिष्ठः, वरीयान् वरिष्ठः, प्रेयान् प्रेष्ठः, श्रेयान् श्रेष्ठः, ज्यायान् ज्येष्ठः, भूयान् भूयिष्ठः। "जो वस्तु पहिले वैसी नहीं थी फिर हो जाय" इस अर्थ में कृ भू अस् धातु के योग में 'च्वि' प्रत्यय होता है, च्वि का तो लोप हो जाता है पर पूर्व पद के 'अ, आ' का 'ई' हो जाता है, अन्य स्वर दीर्घ हो जाते हैं, गृहीभवति, पटू करोति, गङ्गी स्यात्। भव अर्थ में यत् प्रत्यय—मुख्यम्, दिश्यम्, दन्त्यम्, साक्ष्यम्, अन्त्यम्, न्याय्यम्, वंश्यः, जघन्यः आदि।

(१८) जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, निबन्धों में समासों का प्रयोग करना अनिवार्य नहीं है, फिर भी अति संक्षेप में इनका यहाँ निर्देश किया जा रहा है—

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(अ) अव्ययीभाव (जो पहिले नहीं था उसका अव्यय हो जाना।) इस समास में एक पद अव्यय और दूसरा संज्ञा होता है, समास के बाद दोनों मिलकर अव्यय बन जाते हैं। अतः इनका प्रयोग प्रायः क्रिया-विशेषण के रूप में होता है, रूप नहीं चलते। और इस समास को बनाते समय इन नियमों पर ध्यान रखना चाहिए—

(१) यदि शब्द अकारान्त हो तो फल शब्द की तरह नपुं० लि० हो जायेगा, जैसे—यथाकामम्, यथाकालम्। यदि इकारान्त और उकारान्त हो, तो वारि और मधु शब्द के समान वैसा ही रहेगा, जैसे—यथाशक्ति, यथामति उपधेनु। यदि 'ऐ, ए' हो तो उसको 'इ' 'ओ' और 'औ' को 'उ' हो जाता है, जैसे—गोः समीपम्—उपगु, नावः समीपम्—उपनु। यदि 'ई' 'ऊ' हो, तो ह्रस्व हो जायेगा, जैसे—उपनदि, उपवधु। इसी प्रकार 'आ' को 'अ' हो जायेगा—गङ्गायाः समीपम् उप-गङ्गम्।

(२) अव्ययीभाव आदि समासों में समासान्त पद के बाद कुछ प्रत्यय भी होते हैं, जिन्हें समासान्त प्रत्यय कहते हैं। अव्ययी भाव समास में मुख्यतः टच् (अ) प्रत्यय होता है, यह प्रत्यय अन् अन्त वाले, (जैसे—राजन्) शब्दों से होता है, फलतः शब्द के अन् का लोप हो जाता है, प्रत्यय के 'अ' के साथ मिलने पर वह शब्द अकारान्त बन जाता है, पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग में तो यह प्रत्यय नित्य होता है पर नपुं० में विकल्प से होता है, जैसे—उपराजम्, अध्यात्मम्, उपचर्मम्-उपचर्म। कुछ अन्य शब्दों से भी विकल्प से टच् प्रत्यय होता है—उपसमिधम्—उपसमित्, उपसरितम्—उपसरित्, उप-नदम्—उपनदि, उपगिरम्—उपगिरि, उपशरदम्, उपजर-सम्, उपदिशम्। टच् प्रत्यय होने पर 'इ' का लोप और पर को परो हो जाता है—अप्रत्यक्षम्, परोक्षम्, समक्षम्, निर्म-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

क्षिकम्, निर्जनम्, अति मात्रम्, अतियौवनम्, अनुविष्णु, अनुरूपम्, प्रत्यर्थम्, प्रतिग्रामम्, प्रत्यहम्, यथाविधि, सहरि, यावदवकाशम्, यावच्छक्यम्, वहिर्वनम्, प्राग्बनम्, पारेगङ्गम्, द्वियमुनम्, इत्यादि ।

(आ) तत्पुरुष समास दो प्रकार का होता है–१–व्यधिकरण तत्पुरुष, जिसमें प्रथम शब्द किसी दूसरी विभक्ति का होता है । २—समानाधिकरण, जिसमें दोनों पद एक विभक्ति के होते हैं । प्रथम में द्वितीया से सप्तमी तक सभी विभक्तियाँ आती हैं, यथा—द्वि०—नगरगतः, तृ०—शराहतः, च०—विप्रगौः, पं०—चोरभयम्, षष्ठी—राजपुरुषः, स०—द्यूतकुशलः । समानाधिकरण अथवा कर्मधारय—यह कई प्रकार का होता है—

(१) विशेषण पूर्वपद कर्मधारयः—नीलोत्पलम्, किम्पुरुषः, किंसखः, किंप्रभुः, किंदेशः अर्थात् कुत्सित देश ।

(२) उपमान पूर्वपद कर्मधारयः—घनश्यामः ।

(३) उपमानोत्तर कर्मधारयः—मुखकमलम् (मुखं कमलमिव) पुरुषसिंहः (पुरुषः एव सिंह)—दोनों ही प्रकार से विग्रह होता है ।

(४) विशेषणोभयपद कर्मधारयः—कृष्णश्वेतः, स्नातानुलिप्तः ।

(५) द्विगु समासः—इसका पूर्वपद संख्यावाचक होता है । इसका प्रयोग कई प्रकार से होता है—

जब उसके आगे तद्धित प्रत्यय हो, यथा षाण्मातुरः (षण्मातृ+अ) ।
जब उसको किसो अन्य समास में आना हो, यथा–पञ्चगवधनः ।
जब वह किसी समूह या समाहार का द्योतक हो, यथा–पञ्चपात्रम् ।

पञ्चनगरम्, त्रिभुवनम्, चतुर्भुजम्, पञ्चगवम् । मूल, वट, लोक शब्दों के साथ समाहार द्विगु होने पर समस्त पद ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग बन जाता है—पञ्चमूली, पञ्चवटी, त्रिलोकी ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

आकारान्त शब्द में विकल्प से-स्त्री लि०—पञ्चखट्वी-खट्वा।

(६) नञ् तत्पुरुष—असत्यम्, अनुचितम्, (स्वरादि शब्द के आगे रहने पर 'न' को 'अन्' अन्यत्र 'न' को 'अ' होता है।

(७) प्रादि तत्पुरुष—कुपुरुषः, प्राचार्यः, अतिमालः, अवकोकिलः, पर्यध्ययनः, निर्नगरः-निर्गृहः।

(८) गतितत्पुरुषः—ऊरीकृत्य, स्वीकृत्य, नीलीकृत्य, अलंकृत्य सत्कृत्य, साक्षात्कृत्य, पुरस्कृत्य, अस्तंगत्य, तिरोभूय, तिरस्कृत्य, विकल्प से होता है, अतः तिरः कृत्वा भी।

(९) उपपदतत्पुरुष—कुम्भकारः, स्वर्णकारः, धनदः, गोदः।

(१०) अलुक् समास—आत्मनेपदम्, परस्मैपदम्, पश्यतोहरः, युधिष्ठिरः, वनेचरः, अन्तेवासी, सरसिजम्, खेचरः इत्यादि।

(११) मध्यम पदलोपी समास—शाकपार्थिवः, देवब्राह्मणः।

(इ) वहुब्रीहि—समस्त पद किसी अन्य का विशेषण होता है। यह भी व्यधिकरण और समानाधिकरण भेदतः दो प्रकार का होता है :—

व्यधिकरण—इन्दुः शेखरे यस्य=इन्दुशेखरः, चक्रपाणिः, चन्द्रस्य कान्तिः इव कान्तिः यस्य—चन्द्रकान्तिः।

समानाधिकरण में द्वि० से सप्तमी तक सब विभक्ति आती हैं; यथा—प्राप्तमुदकं यं स प्राप्तोदकः ग्रामः। जितेन्द्रियः मुनिः, उपहृत-पशुः रुद्रः, उद्धृतौदना स्थाली, निर्धनः जनः, पीताम्बरः—चित्रगुः, वीरपुरुषकः। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार के भी वहुब्रीहि होते हैं—

विगतं जीवितं यस्य विजीवितः, अविद्यमानः पुत्रः यस्य अपुत्रः। रूपवती भार्या यस्य रूपवद्भार्यः, परन्तु गङ्गाभार्यः, वामोरूभार्यः, दत्ताभार्यः, पञ्चमीभार्यः, सुकेशीभार्यः, शूद्राभार्यः, ही बनेंगे। समासान्त कप् प्रत्यय—बहवः दण्डिनः यस्यां बहुदण्डिका नगरी। पर पुल्लिङ्ग बनाने में विकल्प से होगा—वहुदण्डिकः बहुदण्डी ग्रामः।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इसी प्रकार नदी संज्ञक शब्दों से, ऋकारान्त तथा उरस् आदि शब्दों से कप् (क) प्रत्यय होता है–ईशकर्तृकः संसारः, सुशीलमातृकः पुरुषः, अन्नधातृकः जनः, रूपवत्स्त्रीकः, गुणवत्पत्नीकः, सस्त्रीकः, सुन्दर-बधूकः, व्यूढोरस्कः, प्रियसर्पिष्कः। कुछ शब्दों में इच्छानुसार कप् होता है—अन्यमनस्कः, अन्यमनाः, महायशस्कः महायशाः, पुष्पा-मालाकः पुष्पमालकः।

(ई) द्वन्द्व समास—तीन प्रकार का होता है :—

(१) इतरेतर द्वन्द्व—राम कृष्णौ, रामभरतलक्ष्मणाः।

(२) समाहार द्वन्द्व—इसमें सदा नपुं लि० एक वचन होगा—आहार-निद्राभयम्, पाणिपादम्, अहिनकुलम्, गोधूमचण-कम्, यूकालिक्षम्।

(३) एकशेष द्वन्द्व—माता च पिता च=पितरौ, शवशुरौ, रामश्च रामश्च=रामौ, रामश्च रामश्च रामश्च=रामाः। समा-नार्थक विरूप शब्दों में भी यह समास होता है, स्त्रीलिङ्ग और पुल्लिङ्ग में समासान्त पद पुल्लिङ्ग में रहेगा–ब्राह्मणी च ब्राह्मणश्च=ब्राह्मणौ, शूद्रौ, अजौ, चटकौ, समानार्थ विरूपों में कोई भी शेष रह सकता है—घटश्च कलशश्च=घटौ या कलशौ।

(४) एक शेष के अतिरिक्त इस समास में यह भी देखा जाता है कि किस शब्द को पूर्व में रखा जाय, इसके लिए निम्न लिखित नियम हैं :—

इकारान्त उकारान्त का पूर्व प्रयोग=हरिश्च हरश्च=हरि-हरौ, हरिश्च गुरुश्च हरश्च=हरिगुरुहराः।

स्वरादि अकारान्त पूर्व में रखे जाते हैं—ईशकृष्णौ।
कम स्वरों वाला पूर्व में—शिवश्च केशवश्च=शिवकेशवौ।
ईश्वर प्रकृती, इन्द्राग्नी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वर्णों में तथा भाइयों में ज्येष्ठ क्रम से—ब्राह्मणक्षत्रियौ-वैश्यशूद्रौ, क्षत्रियवैश्यौ, रामलक्ष्मणौ, युधिष्ठिरार्जुनौ ।

(उ) समासान्त प्रत्यय :—

(१) तत्पुरुष में राजन् अहन् सखि अन्त वाले शब्दों से टच् प्रत्यय—महाराजः, देवराजः, उत्तमम् अहः=उत्तमाहः, अर्जुनसखः । परन्तु नञ् समास में नहीं–न राजा=अराजा, न सखा=असखा । शोभनः राजा=सुराजा (पूजनार्थक शब्द के पूर्वपद में भी टच् नहीं होता) ।

(२) महान् का 'महा' केवल कर्मधारय और बहुब्रीहि में ही होता है, अन्यत्र नहीं, अतः महतां सभा=महत्सभा होगा ।

ऋक्, पुर्, अप्, धुर्, पथिन् शब्दों के अन्त में रहने पर समासान्त 'अ' प्रत्यय होता है—अर्धर्चः । रामपुरम् । निर्मलापं सरः । राज्यधुरा । परन्तु अक्षस्य धूः=अक्षधूः होगा । रम्यपथः देशः ।

अहन् सर्व एकदेश (अवयव-भाग) सूचक शब्द, संख्यात और पुण्य शब्दों का रात्रि के साथ समास होने पर अच् समासान्त होता है—अहोरात्रः, सर्वरात्रः, पूर्वं रात्रेः=पूर्वरात्रः । पुण्यरात्रः, अतिरात्रः । नवानां रात्रीणां समाहारः नवरात्रम् । संख्यापूर्वक रात्रि शब्द नपुंसक लिङ्ग में शेष पुल्लिङ्ग में रखे जाते हैं ।

यदि अहन् शब्द अन्त में हो तो उसको अह्न और यदि यह अह्न अकारान्त शब्द के 'र' के वाद हो तो न को 'ण' भी हो जाता है—पूर्वाह्णः सर्वाह्णः । परन्तु संख्यावाची शब्द के पूर्व में रहने पर समाहार में अह्न नहीं होता—सप्ताहः, द्वयहः, त्र्यहः ।

नञ् दुः सु के साथ प्रजा मेधा का वहुब्रीहि समास होने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

पर समासान्त असुच् (अस्) प्रत्यय होता है—अप्रजाः, दुष्प्रजाः, सुप्रजाः, अमेधाः, दुर्मेधाः, सुमेधाः ।

केवल एक ही शब्द के पूर्वपद में रहते धर्म शब्द से अनिच्-समानधर्मा । धनुषन्त वहुब्रीहि में अनङ् होता है पुष्पं धनुः यस्य=पुष्पधन्वा । जायान्त वहुब्रीहि में निङ् होता है—भूः जाया यस्य=भूजानिः, जानकीजानिः, युवती जाया यस्य युवजानिः ।

उत् पूति सु सुरभि गन्धान्त शब्द से 'इ' सुगन्धिः पूतगन्धिः उद्गन्धिः सुरभिगन्धिः इत्यादि ।

(१६) संस्कृत निबन्धों के लिए सबसे अधिक आवश्यक है—कारकों का समुचित प्रयोग, किस शब्द के योग में किस अर्थ में कौन-सी विभक्ति होनी चाहिए । इस पर ध्यान देना परमावश्यक है, इस के लिए कुछ नियम नीचे दिये जा रहे हैं—

(अ) प्रातिपदिकार्थ, लिङ्ग, संख्या, परिमाण मात्र का बोध कराने में तथा सम्बोधन में प्रथमा विभक्ति होती है ।

(१) कर्ता के इष्टतम पदार्थ को कर्म कहते हैं और कर्म में द्वितीया-विभक्ति होती है—स शास्त्रं पठति ।

ईप्सित पदार्थ के साथ लगे हुए अनीप्सित पदार्थ में भी—ओदनं भुञ्जानो विषं भुङ्क्ते, ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति । दुह्, याच्, पच, दण्ड, रुध्, प्रच्छ, चि, ब्रू, शास्, जि, मथ, मुष्, नी, हृ, कृष्, वह इन धातुओं तथा इनकी समानार्थक धातुओं के गौण कर्म में भी अन्य कारकों की अविवक्षा करके द्वितीया होती है—

गां दोग्धि पयः, बलिं याचते वसुधाम्, तण्डुलानोदनं पचति, गर्गान् शतं दण्डयति, व्रजमवरुणद्धि गाम्, माणवकं पन्थानं पृच्छति, वृक्षमवचिनोति फलानि, बालकं धर्मं ब्रूते शास्ति

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

वा, शतं जयति देवदत्तम्, सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति । देवदत्तं शतं मुष्णाति, ग्राम मजां नयति, हरति, कर्षति, बहति वा ।

(२) अकर्मक धातुओं के योग में देश काल भाव तथा गन्तव्य पथ में भी—कुरुन् स्वपिति, मासमास्ते, गोदोहमास्ते, कोशमास्ते। अधिपूर्वक शी स्था आस् धातुओं के योग में—वानरः वृक्ष मधिशेते, अधितिष्ठति, अध्यास्ते वा ।

(३) एक साथ ही अभि एवं नि पूर्वक विश धातु के योग में—अभिनिविशते सन्मार्गम् । उप अनु अधि आ पूर्वक वस धातु-हरिः गृह मुपवसति, अनुवसति, अधिवसति, आवसति ।

(४) लज्जा, सन्ता, स्थिति, जागरण, वृद्धि, क्षय, भय, जीवित, मरण, शयन, क्रीडा, इत्यादि अर्थों वाले धातु अकर्मक होते ही हैं, पर जब धातु का अर्थ बदल जाता है, तब भी वह सकर्मक होते हुए भी अकर्मक हो जाता है जैसे; गर्दभः भारं बहति—पर नदी बहति—यहाँ अकर्मक है । जब धात्वर्थं में ही कर्म समाविष्ट हो जाता है—जीवनं जीवति, पर 'जीवति' यहाँ अकर्मक हो गया है ।

जब धातु का कर्म प्रसिद्ध होता है—मेघः जलं वर्षति, पर मेघो वर्षति में अकर्मक है ।

जब वक्ता कर्म का प्रयोग ही न करना चाहे, हितान्न यः शृणोति । इसी प्रकार उपसर्ग वशात् अकर्मक धातु भी सकर्मक हो जाते हैं—भवति (अ०) अनुभवति (स०) वर्तते (अ०) अनुवर्तते (स०) पतति (अ०) उत्पतति (स०) रोहति (अ०) आरोहति (स०) ।

(५) उपयतः, सर्वतः, धिक्, अधोऽधः, उपर्युपरि, अध्यधि, अभितः, परितः, समया, निकषा, हा, प्रति के योग में द्वितीया होती है । धिक् के योग में प्रथमा और सम्बोधन भी होता है ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(६) अन्तरा (बीच में) अन्तरेण (विना) से युक्त शब्द में भी द्वितीया होती है—अन्तरा त्वां मां हरिः, हरिमन्तरेण न सुखम्।

(७) समय और मार्गवाचक में लगातार सम्बन्ध रहने पर भी द्वितीया—दशवर्षाणि वेदम पठत्, क्रोशं कुटिला नदी।

(८) गत्यर्थक धातुओं का कर्म जब मार्ग नहीं होता और शरीर से क्रिया भी नहीं करनी पड़ती तब उसमें द्वितीया होती है—द्वेष्यतां याति, तृप्ति गतः, पात्रतां याति, स्मृति यातः, रामाख्यां गतः।

(९) दुह्, याच् आदि द्विकर्मक धातुओं से मुष् तक के गौण कर्म में प्रथमा विभक्ति हो जाती है जब कि वाक्य कर्मवाच्य में हो, यथा—कृष्णेन धेनुः दुग्धं दुह्यते, पर कर्मवाच्य में नी हृ कृष और वह धातुओं के प्रधान कर्म में प्रथमा होगी, यथा—तेन बालकः ग्रामं नीयते ह्रियते कृष्यते उह्यते वा।

(आ) कर्ता के सबसे अधिक उपकारक पदार्थ को करण कहते हैं और करण में तृतीया होती है—रामः वाणेन रावणं हतवान्।

(१) कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में कर्ता में भी तृतीया होती है।

(२) प्रकृति आदि शब्दों के योग में भी तृतीया होती है—प्रकृत्या दयालुः, नाम्ना सुतीक्ष्णा, चरितेन दान्तः, सुखेन वसति, क्लेशेन उत्तिष्ठति, सारल्येन पठति, गोत्रेण गार्ग्यः, समेन याति, विषमेन याति।

(३) कालसातत्य मार्गसातत्य द्वारा कार्य सिद्धि होने में कालवाचक और मार्गवाचक शब्दों से तृतीया होती है, क्रोशेन पुस्तकं पठितवान्, चतुर्भिर्वर्षैः गन्थं लिखितवान्, त्रिभिर्दिनैः नीरोगो जातः।

(४) सह और सहार्थक शब्दो के योग में—पुत्रेण सह, साकं, सार्धं,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

समं पिता आगतः । पृथक् विना नाना के योग में भी तृतीया होती है ।

(५) जिस विकृत अङ्ग द्वारा अंगी में विकार लक्षित हो उसमें तृतीया होती है–अक्ष्णा काणः, पादेन खञ्जः, पृष्ठेन कुब्जा । शिरसा खल्वाटः, कर्णेन वधिरः ।

(६) तुला और उपमा शब्दों को छोड़कर शेष सभी तुल्यथिक शब्दों के योग में तृतीया व षष्ठी होती है—तेन सदृशः तस्य समो वा वलवान् । नायं मम मया वा समं कार्यं करोति । हेतु में भी—विद्यया बुद्धिः वर्धते, धनं श्रमेण भवति । पञ्चमी भी—विनयात् पात्रतां याति, धनाद् धर्मो भवति ।

(७) गम्यमान क्रिया के योग में तथा अलं, खलु, कृतम के योग में भी-अलं श्रमेण, कृतम् रोदनेन । कार्यं अर्थः प्रयोजन गुण फल आदि के योग में भी तृतीया=त्वया किं कार्यं, फलं, प्रयोजनं वा ।

(इ) दान के कर्म द्वारा तथा किसी विशेष द्वारा भी जिसे कर्ता सन्तुष्ट करना चाहता है उसमें चतुर्थी होती है—विप्राय गां ददाति, पत्ये शेते ।

(१) रुच्यर्थक धातुओं के योग में प्रसन्न होने वाले पदार्थ में चतुर्थी होती है—भक्तिः हरये रोचते । मोदकाः बालकाय रोचन्ते ।

(२) जिस पर क्रोध, ईर्ष्या, द्रोह, असूया दिखाई जाय—रामाय क्रुध्यति आदि । पर यदि ये धातु सोपसर्ग होंगे तो द्वितीया होगी—सबालक मभिक्रुध्यति ।

(३) तुमुन् प्रत्यय के अर्थ को प्रकट करने वाले धातु से बनने वाली भाववाचक संज्ञा के प्रयोग में भी—यागाय याति, यष्टु याति । स्पृह धातु के प्रयोग में जिसे चाहा जाय—पुष्पेभ्यः स्पृहयति ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(४) जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य किया जाय—मुक्तये हरिं भजति। काव्यं यशसे, त्रिभूषणाय सुवर्णम्, यूपाय दारू। हित और सुख योग में भी—तस्मै हितम् सुखम् वा।

(५) नमः, स्वस्ति, स्वाहा स्वधा अलम् आदि के योग में भी—हरये नमः, स्वस्ति भवते, देवाय स्वाहा, पितृभ्यः स्वधा। अलं स युद्धाय। पर नमः के आगे कृ धातु के प्रयोग में द्वितीया ही—स देवान् नमस्करोति।

अलम् से पर्याप्त अर्थ के वाचक प्रभु, समर्थ शक्त के योग में, तथा कथ, ख्या, शंस, चक्ष, नि+विद के योग में भी चतुर्थी—रामः राक्षसेभ्यः प्रभुः, शक्तः, समर्थः। इसी प्रकार जिसके पास कोई चीज भेजी जाय—राघवे दूतः विसृष्टः।

(उ) पृथक् होने में जिससे पृथक् हुआ जाय उसमें पञ्चमी होती है—वृक्षात् पत्रं पतति, ग्रामात् स आयाति। धावतः अश्वात् पतति।

(१) जुगुप्सा (घृणा) विराम (रुकना या हटना) प्रमाद (भूल या उपेक्षा) अर्थ वाले शब्दों के योग में पञ्चमी होती है—धर्मात् प्रमाद्यति, कार्यात् विरमति, पापाज्जुगुप्सते, अधिकारात् प्रमत्तः।

(२) जिससे भय या त्राण चाहा जाय—चौराद् बिभेति, सिंहात् त्रायते।

(३) जिससे रोका जाय–पापात् निवारयति, अन्नात् गां वारयति।

(४) जिससे छिपा जाय—मातुः कृष्णः निलीयते।

(५) जिससे नियम पूर्वक पढ़ा जाय—उपाध्यायात् अधीते।

(६) जिससे उत्पन्न हो—हिमालयात् गंगा प्रभवति, कामात् क्रोधः अभिजायते।

(७) अन्य, आरात्, इतर, ऋते, दिशावाचक पूर्व आदि, प्रत्यक्, उदक् आदि, शब्दों के योग में भी पञ्चमी—रामात् भिन्नः

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

इतरः, अन्यः वा, आराद् वनात्, ऋते रामात्, चैत्रात् फाल्गुनः पूर्वः, प्राक् प्रत्यक् वा ग्रामात्, शैशवात् प्रभृति, तस्मादारभ्य, ग्रामाद् वहिः, रामात् परम्, तस्मादूर्ध्वम्, तस्मादनन्तरम् इत्यादि। अभिविधि अर्थ में भी—आजन्मनः शाठ्य मशिक्षितः जनः। विनिमय अर्थ में भी—तिलेभ्यः माषान् प्रतियच्छति।

(ऊ) कर्ता और कर्म के द्वारा किसी भी क्रिया का आधार अधिकरण कहलाता है और अधिकरण में सप्तमी होती है, यह आधार कहीं औपश्लेषिक, जैसे—कटे आस्ते, कहीं वैषयिक्,—जैसे मोक्षे इच्छास्ति, और कहीं अभिव्यापक्—जैसे, तिलेषु तैलम्, रूप होता है, सर्वत्र सप्तमी होती है।

(१) क्त प्रत्ययान्त के बाद इन् प्रत्यय से बने शब्दों के योग में भी सप्तमी होती है—अधीती व्याकरणे।

(२) साधु और असाधु शब्दों के योग में—साधुः मातरि, असाधुः मातुले कृष्णः। असाधुः दुर्जने जनः।

(३) जिससे निर्धारण किया जाय—कविषु कालिदासः श्रेष्ठः। छात्रेषु श्यामः पटुः, नरेषु नापितः धूर्तः, खगेषु वायसः।

(४) व्यवहार और आचरण अर्थ वाले शब्दों के योग में भी—अस्मिन् विनयेन वर्तताम्, गुरुषु सारल्येन वर्तस्व। स्नेह, आदर, अनुराग अर्थ वाले शब्दों के योग में भी—एषु में सोदरस्नेहः, स्वयोषिति रतिः, तस्मिन् अनुरक्ताः जनाः, तस्यां मे अभिलाषः। शास्त्रेषु अत्यादृतः सः। कारण के अर्थ में—नृणां वृद्धौ दैवमेव कारणम्। युज् धातु से बने शब्दों के योग में—कर्मणि नियुक्तः। तस्मिन् प्रभुत्वं युज्यते।

(५) णिजन्त क्षिप् मुच् अस् पत् धातुओं से बने शब्दों के योग में—मृगेषु शरान् मुमुक्षुः, मन्त्रिणि न्यस्तभरः, नास्मिन् शरः निपात्यः।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(६) व्यापृत, आसक्त, व्यग्र, तत्पर, कुशल, निपुण, पर, प्रवीण आदि शब्दों के योग में भी—कार्ये व्यग्रः कुशलः परो वा।

(७) अप पूर्वक राध् धातु से बने शब्दों के योग में—तस्मिन् अपराद्धा सा।

(८) जब किसी कार्य के हो चुकने पर दूसरा कार्य प्रतीत हो तो प्रथम कार्य में सप्तमी—सूर्ये अस्तं गते ते गृहं गताः। मातरि सुप्तायां बालो रोदिति। तस्मिन् गायति सर्वे हसन्ति।

(ए) जो बात अन्य विभक्तियों द्वारा नहीं बताई जाती उसको बताने के लिए षष्ठी होती है, और ये बातें सम्बन्ध विशेष होती हैं, अर्थात् सम्बन्ध मात्र की विवक्षा में षष्ठी होती है—राज्ञः, पुरुषः, जनकस्य बालः। मृत्तिकायाः घटः।

(१) हेतु शब्द के प्रयोग में हेतु में और जिसका हेतु उसमें भी षष्ठी—अन्नस्य हेतोः वसति।

(२) निमित्त शब्द का अर्थ रखने वाले—कारण हेतु प्रयोजन आदि शब्दों के प्रयोग में सर्वनाम में तथा इन निमित्तार्थक शब्दों में प्रायः सभी विभक्तियाँ होती हैं—
किं निमित्तम्, को हेतुः, किं प्रयोजनम्
केन निमित्तेन, कं हेतुम्, केन प्रयोजनेन इत्यादि।

(३) अतसुच् प्रत्ययान्त दक्षिणतः उत्तरतः आदि, अधः अग्रे आदौ पुरः आदि के योग में—ग्रामस्य दक्षिणतः, तस्य अग्रे, वृक्षस्य अधः, तस्य पुरः।

(४) दूर और अन्तिक तथा एतत्समानार्थक शब्दों के योग में—षष्ठी और पञ्चमी—रामस्य रामाद् वा दूरम्।

(५) अधिपूर्वक 'इ' (स्मरण करना) तथा दय, और ईश तथा इन अर्थों वाली धातुओं के योग में—मातुः स्मरति, गात्राणामनीशः जातः, तस्य त्वं कथं न दयसे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

(६) कृदन्त प्रत्ययान्त शब्दों के योग में कर्ता और कर्म दोनों में षष्ठी—रामस्य रोदनम्, ईश्वरस्य कृतिः इत्यादि ।

(७) क्त प्रत्ययान्त शब्द जब वर्तमान में प्रयुक्त हो तो उसके योग में षष्ठी—स राज्ञां मतः बुद्धः पूजितो वा ।

(८) आयुष्य, मद्र, भद्र, कुशल, सुख, हित, अर्थ आदि के योग में भी—चतुर्थी-षष्ठी—वत्साय वत्सस्य वा हितम् सुखं कुशलं वा ।

(९) अनुकरण करने या सदृश के अर्थ में अनु+कृ के कर्म में षष्ठी—तस्याः स्मितस्यानु करोति ।

अनुरूप योग्य सदृश अर्थ वाले शब्दों के योग में भी—तस्यानुरूपम्, सदृशमेतत्तव स्नेहस्य । कृते मध्ये समक्षम् आदि के योग में भी—तस्य कृते, तस्य मध्ये ।

(१०) प्रिय वल्लभ आदि अर्थ वाले शब्दों के योग में—रामस्य प्रिया सीता, कायः कस्य न वल्लभः । इत्यादि ।

(२०) इस प्रकार सन्धि, समास, कृदन्त, तिङन्त, कारक, तद्धित आदि के नियमों के अनुसार बनने वाले शब्दों पर ध्यान रखकर यदि लिखा जाय तो अशुद्धियाँ नहीं रहतीं, अल्पज्ञ छात्रों को इन नियमों पर ध्यान रखना आवश्यक है ।

Bhawan's Sri Sankaracharya Sanskrit Bharatiya Vidya Mahavidyalaya
566

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh.